महोपाध्याय श्रीशान्तिचन्द्रगणि-विरचितः

कृपारसकोशः ॥

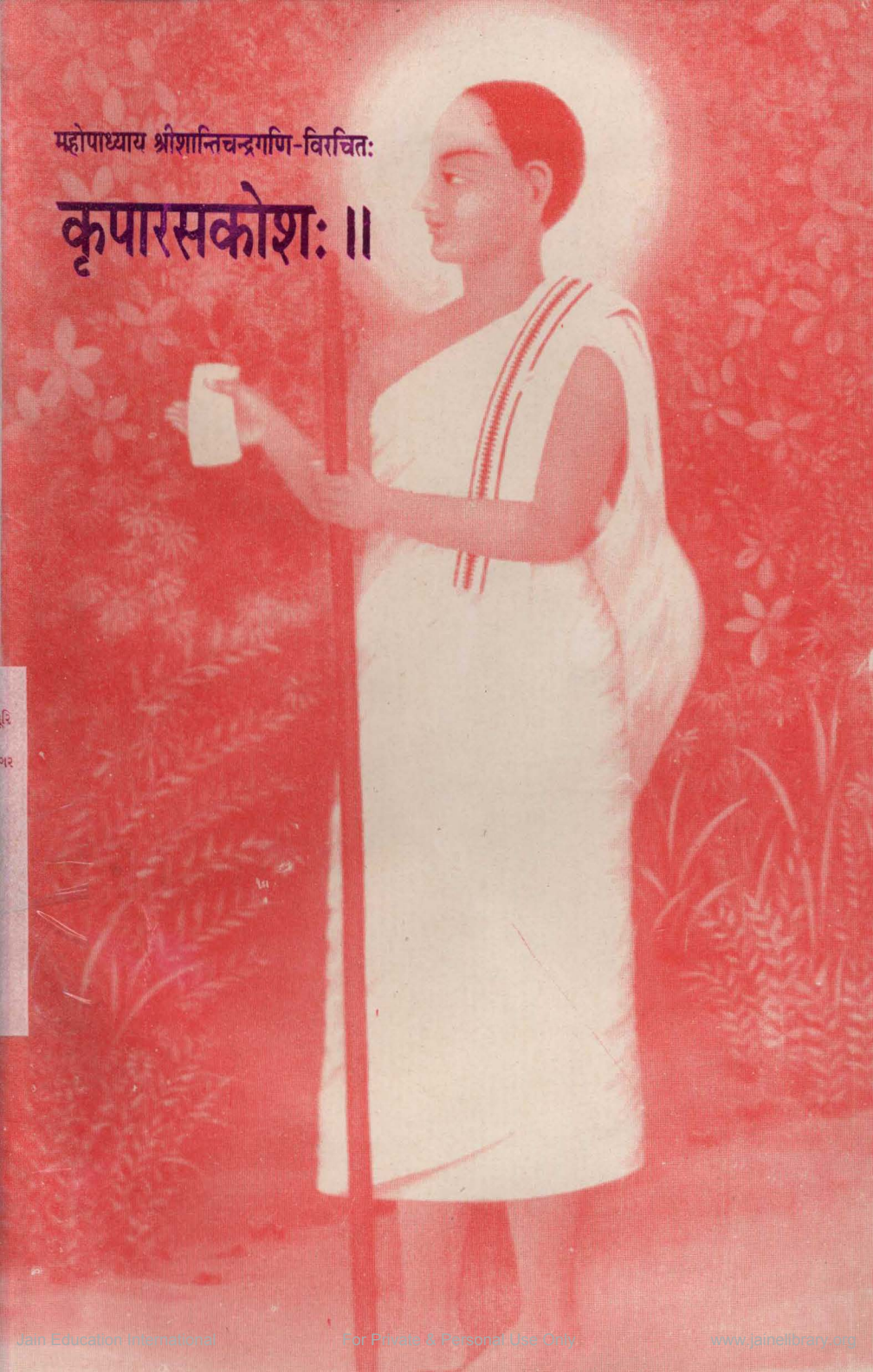

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जगद्गुरु-हीर-स्वर्गारोहण-चतुःशताब्दी ग्रन्थमाला-२

अर्हम् ॥

महोपाध्याय श्रीशान्तिचन्द्रगणि-विरचितः

कृपारसकोशः ॥

आद्य संपादक : अनुवादकः

पुरातत्त्वाचार्य मुनि जिनविजयजी

परिशिष्टादिना समलंकृत्य पुनः संपादकः

पं. शीलचन्द्रविजय गणि

प्रकाशकः

श्रीजैन ग्रन्थप्रकाशन समिति

खंभात

ई. १९९६ सं. २०५२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कृपारसकोश : श्रीशान्तिचन्द्रगणिकृतः

पुनःसंपादन : पं. शीलचन्द्रविजय गणि

आवरण चित्रपरिचय : जगद्गुरु श्री हीरविजयसूरीश्वरजी का तैलचित्र

प्रकाशक : श्रीजैन ग्रन्थ प्रकाशन समिति, खंभात
शाह शनुभाई कचराभाई
कापडिया बाबुलाल परसोत्तमदास
जीराला पाडो, खंभात - ३८८ ६२०
© सर्वाधिकार सुरक्षित

ई. १९९६ वि.सं. २०५२
प्रति : ५००
मूल्य : रु. ४०/-

प्राप्तिस्थान :
सरस्वती पुस्तक भण्डार
११२, हाथीखाना, रतनपोल
अमदावाद-३८० ००१

मुद्रक : पारिजात प्रिन्टरी - अमदावाद

आर्थिक सौजन्य

श्री कारेलीबाग श्वेताम्बर मूर्तिपूजक जैन संघ,
वडोदरा - १८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संपादक का प्राक्कथन

जगद्गुरु श्रीहीरविजयसूरिजी के अन्तेवासी एवं वाचकरत्न श्रीसकलचन्द्र गणि के शिष्य महोपाध्याय श्रीशान्तिचन्द्रगणि द्वारा रचे गये ग्रन्थ 'कृपारसकोश' की यह संशोधित आवृत्ति जिज्ञासुओं एवं अभ्यासीओं के करकमलोंमें अर्पण करते हुए आज प्रसन्नताकी अनूभूति हो रही है।

मुघल सम्राट् अकबरकी प्रशस्ति के रूपमें रचा गया यह ग्रन्थ इसलिये महत्त्वपूर्ण है कि इस की रचना एक जैनमुनिने की है। सामान्यतया जैन मुनि विशिष्ट प्रयोजन के अलावा कभी किसी सम्राट् की प्रशस्ति करना नहीं चाहते, नहीं करते। फिर यह तो ठहरा म्लेच्छ या यवन सम्राट्! इस की प्रशस्ति जैन साधु भला क्यों करेगा?

करेगा, अवश्य करेगा, क्योंकि यह व्यक्ति कोई सामान्य या परंपरागत ढंग का एकांगी मुस्लिम शासक नहीं था, यह तो था मूलतः क्रूर होते हुए भी सत्संग व धर्मभावना के प्रभाव से अहिंसा व धर्मसहिष्णुता के सद्गुणोंका धनी एक परम उदार सम्राट्। इसने जैन मुनियों के समागम में आने के बाद जो दयाभरपूर कृत्य किये, वह ऐसे थे कि जिससे न केवल जैनधर्मियोंके, अपितु हिन्द की समस्त हिन्दुप्रजा के चित्तमें एक तरह की शांति व स्वस्थताकी लहर पसर गई थी। उनके ऐसे सत्कृत्योंकी अनुमोदना के वास्ते ही श्रीशांतिचन्द्र गणि जैसे महाविद्वान संतने अपनी कलम उठाई, जिसका सुफल है यह "कृपारसकोश"।

इस ग्रंथ के विषय का विस्तृत परिचय पाने के लिये तो मूल संपादक मुनि श्रीजिनविजयजीने लिखी विस्तृत भूमिका ही पढनी होगी। उन्होंने कृति का भाषान्तर भी पृष्ठ भाग में लिख दिया है, वह भी कृतिके अंतरंग परिचय पाने में उपयुक्त सिद्ध होगा।

यह कृतिका प्रथम संपादन व प्रकाशन मुनि जिनविजयजीने ई. १९१७ में भावनगर की जैन आत्मानंद सभा के माध्यम से किया। यह प्रकाशन आज तो अलभ्य ही है, किन्तु तत्कालीन संपादन व मुद्रणकला का एक उत्कृष्ट नमूना है यह पुस्तक, इसमें कोई सन्देह नहीं।

ई. १९५९ में आ. श्रीविजयसमुद्रसूरीश्वरजी-प्रेरित, आगरा स्थित श्री जैन आत्मानंद पुस्तक प्रचारक मंडल द्वारा इस ग्रंथ का यथावत् पुनर्मद्रण हुआ है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किन्तु वह जिज्ञासुओं को अज्ञात व अलभ्य ही रहा है। आज तो उसकी भी प्राप्ति अशक्य है।

वि. सं. २०५२ का वर्ष, जगद्गुरु श्रीहीरविजयसूरि दादा के स्वर्गारोहण की चतुर्थ शताब्दीका मंगल एवं स्मरणीय वर्ष है। वि. सं. १६५२ में भाद्रपद शुक्ल एकादशी के दिन, ऊना (सौराष्ट्र) में उनका कालधर्म हुआ था। उस घटना के इस साल ४०० वर्ष पूर्ण हो रहे है। चतुःशताब्दी के इस स्मरणीय अवसर के उपलक्ष्य में जगद्गुरुश्री के साथ संबद्ध साहित्य का प्रकाशन-पुनर्मुद्रण-संपादन-संशोधन करने का भाव मनमें जागा, और इस भाव को सिद्ध करने की दिशा में डग भरते हुए "जगद्गुरु-हीर-स्वर्गारोहण-चतुःशताब्दी ग्रंथमाला" का प्रारंभ करके, उन ग्रंथमाला के प्रथम पुष्परूपेण स्व.मुनि श्रीविद्याविजयजी-लिखित "सूरीश्वर अने सम्राट्"- नामक, आज अप्राप्य ग्रंथ का प्रकाशन किया गया। प्रस्तुत ग्रंथ उसी ग्रंथमाला का द्वितीय पुष्प है।

इस प्रकाशन की दो विशेषताएं यह है कि इस कृति के पुनः संपादन के लिए चार नवप्राप्त निम्नलिखित हस्तलिखित प्रतियों का उपयोग किया गया है।

१. प्र. श्रीकान्तिविजयजी संग्रह-बडौदा की प्रति, क्रः १८५३
अनुमानतः १७ वें शतककी लिखित।

२. मुनिश्री हंसविजयजी संग्रह - बडौदाकी प्रति, क्रः ७८४
२० वें शतक की लिखित। शायद प्रथम क्रमांकित प्रति की प्रतिलिपि।

३. मांगरोल जैन संघ-ज्ञानभंडार की प्रति। संभवतः १७वें शतककी, और अन्य दो की अपेक्षा अधिक शुद्ध।

४. प्र. कान्तिविजयजी संग्रह - पाटण, क्रः ७/१८८
२०वें शतककी लिखित प्रति।

इनमें से तीसरे क्रमांककी प्रति पाठशोधनमें अधिक उपयुक्त सिद्ध हुई है। इन प्रतियों के आधार से मुद्रित वाचना में अच्छा संशोधन हो सका है, जो अध्येताओं के लिए द्रष्टव्य व आनन्दप्रद हो सकेगा ऐसी श्रद्धा है।

दूसरी बात यह है कि कुछ परिशिष्ट इस मुद्रण में सामिल कर दिए गये हैं। श्लोकसूचि व विशेषनामसूचि तो ठीक ही है, किन्तु विशेष ध्यान देने योग्य है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम के दो परिशिष्ट, जिसमें दो नई अप्रकाशित कृतियां छापी गई है। चूंकि इस कृपारसकोश के कर्ता शान्तिचन्द्र वाचक है, इसलिए उन्हीं की एक अप्रकट व अज्ञात ''हीरविजयसूरि स्वाध्याय'' नामक प्राकृत गाथाबद्ध लघुकृति यहां दी गई है। इस कृति की मूल प्रति मांगरोल संघ के भंडार में हैं। दूसरे परिशिष्ट में 'अकबर सहस्र नाममाला' नामक कृति दी गई है। सहस्र नाम-विषयक रचनाएं देवताओं व देवियों के बारे में तो अनेक उपलब्ध है ही। किन्तु कोई गृहस्थ या राजाकी सहस्रनामावली मिलें, यह मेरे ख्याल में शायद प्रथम ही है। इस कृतिकी एकमात्र प्रति बडौदा-श्रीहंसविजयजी शास्त्रसंग्रह में है। अशुद्ध तो बहुत है, फिर भी रसिकता की दृष्टि से इसका विशेष मूल्य है। यद्यपि इस कृति में कर्ता का नामोल्लेख कहीं भी नहीं है, तो भी आन्तर-परीक्षण से स्पष्ट है कि कोई जैन मुनि की ही यह रचना है।

आशा है कि संशोधित-संवर्धित इस पुनर्मुद्रणमें विद्वानों को रस पडेगा।

इस ग्रन्थ के पुनर्मुद्रण की संमति व अपने संग्रह की एकमात्र किताब उपयोगार्थ देने के लिए भावनगरस्थित जैन आत्मानंद सभा के कार्यवाहकों का आभारी हूं।

पुस्तक-संशोधनार्थ अपने स्वाधीन भंडारों की हस्तप्रतियां की झेरोक्ष कोपियां भेजने के लिये, श्री आत्मारामजी जैन ज्ञानमंदिर-बडौदा, श्रीहेमचन्द्राचार्य ज्ञानभंडार-पाटन एवं श्री तपगच्छ जैन संघ भंडार-मांगरोल के कार्यवाहकों का मैं विशेषरूप से ऋणी हूं।

पुस्तक का सुचारु मुद्रणकार्य सम्हालने वाले श्री पारिजात शाह (पारिजात प्रिन्टरी)का भी स्मरण होता है।

अंत में, जगद्गुरु श्री की पावन स्मृतिमें किया गया यह प्रकाशन सकल श्रीसंघ के करकमलों में समर्पण।

१-१-९६

- *शीलचन्द्रविजय*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुक्रमणिका

प्रास्ताविक कथन १

कृपारसकोशः ३६

कृपारसकोशका संक्षिप्तसार ५८

परिशिष्ट १. वाचकशान्तिचन्द्रगणिरचित श्रीहीरविजयसूरिस्वाध्यायः ॥ ७०

परिशिष्ट २. अज्ञातकर्तृक अकबरसहस्रनाममाला ॥ ७१

परिशिष्ट ३. 'कृपारसकोश' गतानां पद्यानां सूचिः ॥ ७७

परिशिष्ट ४. 'कृपारसकोश' गतविशेषनाम्नां सूचिः ॥ ८०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अकबर बादशाह जगद्गुरु हीरविजयसूरि का स्वागत कर रहे हैं।

Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org

प्रास्ताविक कथन।

भारतवर्ष के मुसलमान बादशाहों में अकबर के जैसा प्रजाप्रिय बादशाह और कोई नहीं हुआ। इस महान् मुगल-संम्राट् के राज्य-चातुर्य और विचार-औदार्य से शिक्षित जगत् सम्यक् तया परिचित है। इस के ऐश्वर्यशाली और प्रतापवान् जीवन का थोडा बहुत परिचय भारत के प्रत्येक विद्यार्थी को अवश्य कराया जाता है। इसी महान् नृपति के उदार-हृदय-मंदिर में दया-देवी की शाश्वत स्थापना करने के लिये, देवी के परम-उपासक और जैनश्वेताम्बर संप्रदाय के प्रभावक आचार्य श्रीहीरविजयसूरि के सुप्रतिष्ठित विद्वान् शिष्य श्रीशान्तिचन्द्र उपाध्याय ने, कृपा-करुणा रूप रस-अमृत के कोश-निधि समान इस ''कृपारसकोश'' की रमणीय रचना की है। अकबर के समान श्रीहीरविजयसूरि का भी जीवन, धार्मिक-दृष्टिसे, बडा ऐश्वर्यशाली और तेजोमय था। विद्वानों का समुदाय सूरिमहाराज के पवित्र चरित्र से भी बहुत कुछ परिचित है-नहीं तो होना चाहिए।

बादशाह अकबर के और आचार्य श्रीहीरविजयजी के चरित्र के विषय में अधिक उल्लेखन करने की यहां पर जगह नहीं है;-तो भी प्रस्तुत पुस्तक के कृपारस-कोश के-साथ संबंध रखने वाले इतिहास का ''प्रास्ताविक कथन'' कहे विना पाठकों को इस दया रस के सुंदर सरोवर की मंद और मधुर लहरों का पूर्ण आनन्द नहीं आ सकता; इस लिये, इस शीर्षक नीचे वही लिखा जाता है।

जगद्गुरुकाव्य * में लिखा है कि– अकबर बादशाह एक दिन फतहपुर के शाही महल में बैठा हुआ राजमार्ग का निरीक्षण कर रहा था। इतने में एक बडा भारी जुलूस उस की नज़र नीचे हो कर निकला जिसमें एक स्त्री सुन्दर वस्त्र पहने हुए और फलफूलादि के कुछ थाल सामने रक्खे हुए, पालखी में सवार हो कर

---

* यह काव्य, श्रीहीरविजयसूरि अकबर के दरबार से वापस लौट कर जब गुजरात की ओर आ रहे थे, तब उन के आगमन के समाचार को सुन कर पंडित पद्मसागरगणि ने, काठियावाड के मंगलपुर (मांगलोर) में - संवत १६४६ के आस पास - रच कर, सूरिजी को भेंट के रूप में अर्पण किया था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जा रही थी। बादशाह ने यह देख कर अपने नौकरों से पूछा कि यह कौन हैं और कहां पर जा रही है ? जवाब में नौकरों ने अर्ज़ की कि यह कोई जैन श्रीमन्त श्राविका[+] है जिसने छः महिने के कठिन उपवास किये हैं। इन उपवासों में केवल गर्म पानी पीने के सिवा – सो भी दिन ही में – और कोई भी चीज मुंह में नहीं डाली जाती है। आज जैनधर्म का कोई त्यौहार (पर्व) है इस लिये, यह बाई अपने जैनमंदिर में दर्शन करने के लिये इस उत्सव के साथ जा रही है। बादशाह को यह सुन कर आश्चर्य हुआ; परंतु इस बात पर विश्वास नहीं आया। उसने तुरन्त बाई को अपने पास बुलाया और उसकी आकृति तथा वाणी का ध्यान पूर्वक निरीक्षण किया। यद्यपि बाई के तेजस्वी वदन और निर्दोष वचन को देख-सुन कर उसे, उस के विषय में बहुत कुछ सत्य प्रतीत हुआ तथापि पूरी जाँच करने के लिये उस ने बाई को अपने ही किसी एकांत मकान में रहने की आज्ञा दी। साथ में विश्वासु नौकरों को यह सूचना दी गई कि इस की दिनचर्या का बडी सावधानी के साथ अवलोकन किया जायँ और यह क्या खाती-पीती है इस की पूरी तलास ली जायँ। कोई महिना डेढ महिना इस तरह की जाँच-पडताल करते निकल गया, परंतु उस तपस्विनी की विशुद्ध वृत्ति में किसी प्रकार की दंभ का स्वप्न भी न आया। यह जान कर अकबर के आश्चर्य का पार नहीं रहा। वह उस श्राविका के पास प्रेमपूर्वक जाकर, प्रणाम के साथ बोला कि – "हे माता ! तू इतना कठिन तप क्यों और कैसे कर सकती है ?" तपस्विनी ने केवल इतना ही उत्तर दिया कि– "महाराज ! यह तप केवल आत्महित के लिये किया जाता है और साक्षात् धर्म की मूर्ति समान महात्मा हीरविजयसूरि जैसे धर्मगुरुओं की सुकृपा का एक मात्र फल है।" बादशाहने अपने अपराध की क्षमा माँग कर अच्छे आदर के साथ उस तपस्विनी श्राविका को अपने स्थान पर पहुँचाया। अकबर बडा सत्यप्रेमी और तत्त्वरसिक था। इस लिए वह क्या हिंदु और क्या मुसलमान, क्या ख्रीस्ती और क्या पारसी; सभी धर्मों के ज्ञाताओं को अपने दरबार में बुलाता और उन के धर्म और तत्त्व

[+] इस का नाम अन्यान्य प्रबंधों में 'चंपा' लिखा है और शेठ थानसिंह, जो अकबर का मान्य साहुकार था, के घराने में से बताई गई है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञान के विषय में बहुत कुछ नाना प्रकार के प्रश्न कर अपना ज्ञान बढाता था। जो बातें उसे ठीक लगतीं उन का स्वीकार भी करता था। हीरविजयसूरि का नाम सुनते ही उसे, उन से मिलने की प्रबल उत्कंठा हो आई। सूरिमहाराज के विषय में बादशाह ने अपने अधिकारियों से, वे कैसे और कहां पर रहा करते हैं, इस बारे में पूछगाछ की। * इतिमादखान - गुजराती - जो अपने गुजरात के अधिकार काल में, सूरिजी से अनेक वार मिला था और उन के पवित्र जीवन से बहुत कुछ परिचित था - ने बादशाह से सूरिराज के संबंध में विशेष बातें कहीं; तथा उन का विहार स्थान, जो अधिकतया गुजरात था, बताया । अकबर ने उसी समय मेवडा जाति के मौंदी और कमाल नाम के अपने दो खास कर्मचारियों को बुला कर, अहमदाबाद के तत्कालीन सूबेदार (गवर्नर) शहाबुद्दिन अहमदखाँ के नाम पर एक फरमान पत्र लिख कर, गुजरात की ओर रवाना किये। इस फरमान में बादशाह ने सूबेदार को यह लिखा था कि- जैनाचार्य श्रीहीरविजयसूरि को, बडे आदर के साथ अपने पास- (दरबार-ए-अकबरी में) भेज दें। शहाबुद्दीन ने यह फरमान पाते ही अहमदाबाद के प्रधान प्रधान जैन श्रावकों को अपने पास बुलाये और उन्हें अकबर का वह फरमान दिखा कर सूरिमहाराज को, फतहपुर जाने के लिए प्रार्थना करने की आज्ञा दी। सूरिजी उस समय गंधार-बंदर (जो भरुच जिले में, खंभात की खाडी के किनारे पर, बसा हुआ है और आज कल वेरान पडा है) में चातुर्मास रहे हुए थे। इस लिये श्रावक लोक गंधार पहुंचे और अकबर के आमंत्रण का सारा हाल कह सुनाया। साथ में, अपनी ओर से वहां पर जाने की प्रार्थना भी की। सूरिमहाराजने सोचा कि अकबर बडा सत्य-प्रिय है इस लिए उस के पास जाने से और सदुपदेश देने से बहुत कुछ लाभ हो सकता है। धर्म की ख्याति के साथ देश की भलाई भी हो सकती है। यह विचार कर, सूरिजीने श्रावकों

---

* इतिमाद खान, इ. स. १५५४ से १५७२ तक, गुजरात के सुलतान अहमदशाह २ रे और मुजफ़र शाह ३ रे के समय में, गुजरात के राज्य-कार्य में अग्रगण्य अमीर था। इ. स. १५८३-८४ में अकबर ने फिर भी इसे गुजरात का सूबेदार बनाया था। (गुजरातनो अर्वाचीन इतिहास.)

× तदा मुदा तत्पदपद्मषट्पदोऽतिमेतखानः शुभगीरदोऽवदत् ।
इहाऽस्ति शस्ताकृतिराप्तवाग् व्रती महामतिर्हीर इति व्रतिप्रभुः ॥
— विजयप्रशस्ति, १-१५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की प्रार्थना स्वीकार की और संवत् १६३८ के मार्गशिर वदि ७ के दिन गंधार बंदर से प्रस्थान किया। अहमदाबाद के श्रावक लोक सूरिजी के साथ ही चले। सूरिमहाराज, अपने मुनिधर्मानुसार, नंगे पांव-पैदल ही चलते थे। गंधार से चलकर, मही नदी को पार किया और * वटदल (जिसे आज कल वटादरा कहते हैं) नामक गाँव में पहुंचे। यहां पर खंभात (जो कि निकट ही था) का जैन समुदाय सूरिजी के दर्शनार्थ आया। दो चार दिन ठहर कर सूरिजी ने आगे प्रयाण किया और थोडे ही दिनों में अहमदाबाद पहुंचे। अहमदाबाद के लोकों ने उन का बडे भारी समारोह से नगर प्रवेश कराया। शहाबुद्दीन ने सूरिजी को शहर में आये सुन कर आदर के साथ उन्हें अपने शाहीमहल में बुलवाये। बहुत से हाथी, घोडे तथा हीरा, माणिक्य, मोती आदि बहुमूल्य चीजें सूरिजी को भेट कर बोला कि – "हे साधु महोदय! मुझे अपने स्वामी (अकबर) की आज्ञा है कि- "हीरविजयसूरिजी को जो कुछ चाहें वह भेट कर उन्हें मेरे पास आने की प्रार्थना करें।" इस लिये, आप इन चीजों को ले कर जिस तरह बादशाह मुझ पर खुश रहें वेसा कीजिए।" सूरीश्वर ने अपने मुनिजीवन का परिचय देते हुए खाँ से कहा कि–

रक्षामो जगदङ्गिनो न च मृषावादं वदामः क्वचि-
न्नादत्तं ग्रहयामहे मृगदृशां बन्धूभवामः पुनः।
आदध्मो न परिग्रहं निशि पुननाश्नीमहि ब्रूमहे
ज्योतिष्कादि न भूषणानि न वयं दध्मो नृपैतान्व्रतान् ॥
हीरसौभाग्य, ११ सर्ग, १५० श्लोक।

"हे नृप। संसार मात्र के प्राणियों की हम रक्षा करते हैं, कभी भी झूठ नहीं बोलते, किसी के दिये विना हम कोई चीज हाथ में नहीं लेते, जगत् की सभी स्त्रियों के हम भाई समान हैं, सुन्ना, चाँदी, हीरा आदि बहुमूल्य वस्तु का हम स्वीकार नहीं करते, न कभी रात को कोई चीज मुंहमें डालते, न किसी आभूषण को छूते हैं और नाही, अपने निर्वाह या स्वार्थ के कारण मंत्र, तंत्र या मुहूर्तादि बताते हैं। ऐसी दशामें तुमारी भेट की हुई इन चीजों को ले कर हम

---

* क्रमाद् वटदले फुल्लाम्भोजे भृङ्ग इवागमत्।
स्तंभतीर्थस्य सङ्घेन तस्मिन्प्रभुरवन्द्यत ॥
हीरसौभाग्य, स. ११, श्लो. १०९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्या करें ?'' खां, सूरिजी के इन कठोर नियमों का हाल सुन कर चकित हुआ और बहुत बहुत उन की प्रशंसा करने लगा।

एते निःस्पृहपुङ्गवा यतिवराः श्रीमत्खुदारूपिणो
दृश्यन्तेऽत्र न चेदृशाः क्षितितले दृष्टा विशिष्टाः क्व चित्।
एवं तेन तदीयमृद्गलभटैः सम्यक् स्तवं प्रापिता
वाद्याडम्बरपूर्वकं निजगृहात् साध्वाश्रमे प्रेषिताः॥

जगद्गुरु काव्य, १३९।

ये साधु महोदय निःस्पृहियों- त्यागियों में शिरोमणि और साक्षात् खुदा की मूर्ति है। इन के जैसा त्यागी महात्मा आज तक कहीं नहीं देखा। इस तरह का विचार कर खां ने, अपने सैनिकों के साथ, शाही बाजों के बजते हुए, सूरिमहाराज को, स्वस्थान पर पहुंचाये।

कुछ दिन अहमदाबाद में ठहर कर, जो दो आदमी अकबर का फरमान ले कर आये थे उन्हीं के साथ सूरिजी ने फतहपुर की तर्फ प्रयाण किया [+]। रास्ते में सबसे बडा शहर पहले पट्टन आया। यहां पर सूरिजी के बडे सहाध्यायी और प्रखर पंडित उपाध्याय श्रीधर्मसागरजी तथा प्रधान पट्टधर श्रीविजयसेनसूरि आदि विशाल साधुसमुदाय सूरिजी के दर्शनार्थ उपस्थित हुआ। एक श्राविकाने इस शुभ प्रसंग पर हजारों रुपये खर्च कर बडा भारी उत्सव किया और कुछ जिनप्रतिमायें सूरिजी के हाथ से प्रतिष्ठित कराईं। पट्टन में केवल ७ रोज ठहर कर सूरिमहाराज आगे चले। धर्मसागरजी उपाध्याय को संघ की संभाल रखने के लिये यहां पर रक्खे गये। विजयसेनसूरि, सिद्धपुर तक सूरिजी को पहुंचाने को गये और बाद में वापस लौटे। सिद्धपुर में, इस कृपारसकोश के कर्ता शांतिचन्द्र पंडित सूरिजी की सेवा में हाजर हुए जिन्हें अतियोग्य समझ कर सूरिजीने अपने साथ में लिये। महोपाध्याय श्री विमलहर्षगणि, जो गंधार ही से सूरिजी के साथ थे, उन को अपने पहले अकबर से मिलने के लिये जल्दी के साथ, आगे रवाना किये। सूरिजी धीरे धीरे चलते हुए सरोतरा ग्राम में पहुंचे। यहां का ठाकुर अर्जुन, जो बडा डाकू

[+] सूरिराजोऽथ संप्रस्थितस्तत्पुरान्मेवडाभ्यां पुरोगामुकाभ्यां युतः।
— हीरसौभाग्य, १२-१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

था, सूरिजी को अपने मकान पर ले जा कर उन का खूब आदर- सत्कार किया। सूरिजी ने उसे मीठा धर्मोपदेश दिया जिस से उस ने शिकार वगैरह कुव्यसनों का सर्वथा त्याग कर दिया। सूरिजी आबू-पहाड पर के प्रसिद्ध मंदिरों की यात्रा कर सिरोही पहुंचे। यहां का राजा सुलतान-सिंह बडे समारोह के साथ सूरिजी की पेशवाई में सामने आया और सारे नगर को खूब अच्छी तरह सजा कर खूब धूम-धाम से आचार्य-महाराज का प्रवेशोत्सव कराया। कुछ दिन ठहर कर सिरोही से आचार्य महाराज सादडी नगर को पहुंचे। महोपाध्याय कल्याणविजयजी जो दक्षिण की ओर विचरते थे, सूरिजी को फतहपुर की तरफ जाते सुन कर, यहां पर दर्शनार्थ हाजर हुए। यहां से गमन कर सूरिजी राणपुर के धरणविहार की यात्रा कर आउआ नामक स्थान में पहुंचे। इस गॉव का मालिक जो ताल्हा सेठ था, उस ने आडंबर पूर्वक सूरिजी का शहर - प्रवेश कराया। जितने आदमी सूरिजी की आगेवानी में गये थे उन सब को, ताल्हा सेठ ने एक एक पिरोजी सिक्का -जो उस समय वहां पर रूपये की जगह व्यवहार में लाया जाता था - भेट दिया। कल्याणविजय उपाध्याय, जो सादडी से यहां तक आचार्य महाराज को पहुंचाने आये थे, वापस लौटे। आउआ से चल कर कुछ ही दिन में सूरिजी मेडतानगर को पहुंचे। यहां का सुलतान सादिम सूरिजी की पेशवाई में आया। विमलहर्ष उपाध्याय जिनको सूरिजी ने, सिद्धपुर से, अपने पहले अकबर से मिलने के लिये आगे भेजे थे, वे किसी कारण वश यहां पर ठहरे हुए थे, आचार्य महाराज से मिले। नागोर और बीकानेर शहरों के संघ सूरिजी को वंदन करने के लिये आये। विमलहर्ष उपाध्याय को सूरिजी ने आगे जाने की आज्ञा दे कर पंडित सिंहविमलगणि के साथ, जल्दी से रवाना किये और आप धीरे धीरे वहां से फतहपुर की तरफ बढने लगे। सूरिमहाराज सांगानेर स्थान पर पहुंचे जितने में तो उपाध्यायजी अकबर को आचार्यजी के आगमन की सूचना दे कर वापस आये और सूरिजी की सेवामें दाखल हुए।

बादशाह को सूरिमहाराज के सांगानेर पहुंचने की खबर मिलते ही तुरन्त उसने थानसिंह, अमीपाल और मानू शाह आदि राजमान्य जैन साहुकारों को आज्ञा दी कि– सूरिमहाराज की अगवानी बडे भारी ठाट-माट से की जाय। बादशाह का हुक्म होते ही बडे बडे अफ़सर और धनाढ्य जैन अनेक हाथी, घोडे, रथ और फौज ले कर सूरिजी के सामने सांगानेर पहुंचे। सूरिजी उन के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साथ साथ फतहपुर के पास पहुंचे और शहर के बहार जगमल कछवाहा के महल में उस दिन ठहरे। कोई छः महिने की मुसाफिरी कर, संवत् १६३९ के ज्येष्ठं वदि १३ शुक्रवार के दिन सूरिजीमहाराज फतहपुर पहुंचे। दूसरे दिन सवेरे ही अपने विद्वान् और तेजस्वी शिष्यों के साथ सूरिजी शाही दरबार में गये। इस समय मुनीश्वरजी के साथ– सैद्धान्तिक– शिरोमणि महोपाध्याय श्रीविमलहर्षगणि, अष्टोत्तरशतावधान विधायक और अनेक नृपमनरंजक श्रीशांतिचंद्रगणि, पंडित सहजसागरगणि, हीरसौभाग्य- महाकाव्य के कर्ता के गुरु श्रीसिंहविमलगणि, वक्तृत्व और कवित्व कला में अद्वितीय निपुण तथा विजयप्रशस्तिमहाकाव्य के रचयिता पंडित श्रीहेमविजयगणि, वैयाकरण चूडामणि पंडित लाभविजयगणि और सूरिजी के प्रधानभूत श्रीधनविजयगणि आदि १३[§] प्रधान शिष्य थे।

थानसिंह ने जा कर अकबर को सूरिजी के दरबार में आने की सूचना दी। बादशाह उस समय किसी अत्यावश्यकीय कार्य में गूंथा हुआ था इस लिये उसने अपने प्रिय–प्रधान शेख अबुलफजल को बुला कर सूरिमहाराज के आतिथ्य-सत्कार करने की आज्ञा दी। शेख ने सूरिजी के पास आ कर अकबर की आज्ञा के विषय में निवेदन किया और अपने महल में पधारने के लिए सूरिजी से प्रार्थना की। सूरिमहाराज उस के महल में पधारे और अपने योग्य उचित स्थान पर शेख की अनुज्ञा ले कर बैठ गये।

अबुल-फजल ने प्रथम बडी नम्रता के साथ सूरिजी से कुशल प्रश्नादि पूछे; और बाद में धर्मसंबंधी बातें पूछने लगा। कुरान और खुदा के विषय में उस ने अनेक सवाल जवाब किये जिन का बडी योग्यता के साथ, युक्तिसंगत प्रमाणों द्वारा सूरिमहाराज ने खंडनात्मक जवाब दिया[†]। सूरिमहाराज के विचार सुन कर अबुल-फजल बडा खुश हुआ और बोला कि "आप के कथन से तो यही सिद्ध होता है कि, हमारे कुरान में बहुत सी तथ्येतर बातें लिखी हुई हैं *।"

[§] देखो, विजयप्रशस्ति-काव्य के ९ वें सर्ग के २८ वें काव्य की टीका।

[†] इन शंका-समाधानों का उल्लेख "हीरसौभाग्य-महाकाव्य" के, १३ वें, सर्ग में, बडे विस्तार के साथ किया गया है। जिज्ञासु पाठक वहां से देख लेवें।

* इदं गदित्वा विरते व्रतीन्द्रे शेखः पुनर्वाचमिमामुवाच।
विज्ञायते तद्बहुगर्ह्यवाचि वीचीव तथ्येतरता तदुक्तौ॥
हीरसौभाग्य, १३-१४८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बातों ही बातों में मध्याह्न का समय हो गया। शेख सूरिजी से कहने लगा :- "महाराज ! भोजन का समय हो चुका है। यद्यपि आप जैसे निरीह महात्माओं को शरीर की बहुत कम दरकार रहती है तो भी जगत् की भलाई के लिये थोडा बहुत इस का पोषण करना आवश्यक है। इस लिये किसी उचित प्रदेश में बैठ कर आप भोजन कर लीजिये।" शेख के कथन से सूरिजी पास ही में जो कर्णराजा का महल था उस में भोजन करने के लिये गये, जहां पर पहले ही कुछ साधु, गॉव में से भिक्षाचरी कर लाये थे। सूरिजी सदैव एक ही बार आहार लिया करते थे और वह भी प्रायः नीरस।

अपने कार्य से निवृत्त हो कर बादशाह दरबार में आया और सूरिजी को बुलाने के लिये अबुल-फजल के पास नौकर को भेजा। अबुल-फजल सूरिमहाराज को साथ में ले कर दरबार में हाजर हुआ। सूरिजी को आते देख कर अकबर अपने सिंहासन से उठा और कुछ कदम सामने जा कर बडे भाव से प्रणाम किया। बादशाह के साथ उस के तीनों पुत्रों- शेख सलीम, मुराद और दानियाल--ने भी तद्वत् नमस्कार किया। सूरिजी ने सब को शुभाशीर्षे दीं। "गुरुजी ! चंगे तो हो +" यह कह कर बादशाह ने सूरिजी का हाथ पकडा और अपने खास कमरे में ले गया। वहां पर कीमती गालिचे बिछे हुए थे इस लिये सूरिजी ने उन पर पैर रखने से इनकार किया। बादशाह को इस बात पर आश्चर्य हुआ और उस का कारण पूछा। सूरिजी ने कहा कि - "महाराज ! शायद इन के नीचे कोई चूंटी वगैरह प्राणि हों तो मेरे पैर के वजन से वे दब कर मर जायँ इस लिये हमारे शास्त्रों में मुनियों को ऐसे वस्त्राछन्न- प्रदेश पर पैर रखने की मनाई की गई है !" बादशाह ने सोचा कि ये महात्मा- पुरुष हैं और शायद इन्हों ने कहीं इन बिछानों के नीचे अपनी ज्ञानदृष्टि से प्राणियों का अस्तित्व जान तो न लिया हो। क्यों कि नहीं तो ऐसी पक्की जमीन पर चूंटियों वगैरह का संभव ही कैसे हो सकता है ? अकबर ने गालिचे का एक शिरा उठाया तो दैवयोग से उस के नीचे बहुत सी चूंटियें नज़र पडी ! बादशाह

+ चङ्गा हो गुरुजीति वाक्यचतुरो हस्ते निजे तत्करम्
कृत्वा सूरिवरान्निनाय सदनान्तर्वस्त्ररुद्धाङ्गणे।
तावच्छ्रीगुरवस्तु पादकमलं नारोपयन्तस्तदा
वस्त्राणामुपरीति भूमिपतिना पृष्टाः किमेतद् गुरो !।

जगद्गुरु काव्य, १६८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चकित हो गया। मुनीश्वर के उक्त वचन ने उस के दिल में बडा गहरा प्रभाव डाला। उस ने वहीं पर सुवर्णासन (सोने की खुर्सी) रखवाया और सूरिजी से उस पर बैठने की प्रार्थना की। सूरिमहाराज ने यह कर कि - "हम लोक किसी प्रकार के धातु का स्पर्श नहीं कर सकते" उस पर भी बैठने की अनिच्छा प्रदर्शित की। खैर; वहीं पर शुद्ध और कोरी जमीन पर अपना ही एक छोटा सा ऊन का कपडा बिछा कर सूरिजी बैठ गये। बादशाह भी उन के सामने वहीं गालिचे पर बैठ गया। अबुल-फजल और थानसिंह आदि अन्यान्य सभ्य भी अपने अपने उचित स्थान पर बैठ गये। अकबर ने सूरिजी से कुशल- प्रश्नादि पूछे और अपनी तर्फसे जो तकलीफ दी गई उस की माफी मांगी। सूरिमहाराज ने उचित वाक्यों द्वारा उस के आमंत्रण का समर्थन किया। बादशाहने पूछा कि आप कहां से और किस हालत से चले आ रहे हैं ? जवाब में सूरिजी ने कहा, कि- "आप की इच्छा के कारण हम गुजरात के गंधार बंदर से पैदल ही चले आ रहे हैं।" बादशाह यह सुन कर दंग हुआ और बोला कि- *"अहो। मेरे लिये ऐसी वृद्धावस्था में, इतनी दूर से और इतने दिनों से आप चले आ रहे हैं, तथा ऐसा कठिन कष्ट उठा रहे हैं ? क्या गुजरात के मेरे सूबेदार शहाबुद्दीन अहमदा खां ने अपनी कृपणता के कारण आप को सवार होने के लिये कोई सवारी वगैरह भी नहीं दी*। मुनीश्वर ने कहा - "उन्हों ने तो सब कुछ देना चाहा था परंतु हम अपने नियमानुसार ऐसी एक भी कोई चीज़ नहीं ले सकते।" बादशाह विस्मित हो कर थानसिंह की ओर देखने लगा और बोला कि- "थानसिंह ! मैं तो महात्मा के इस जगद्विलक्षण और अति कठिन जीवन से अनभिज्ञ था परंतु तू तो अच्छी तरह परिचित था। तो फिर मुझ को पहले ही- सूरिमहाराज को इधर का आमंत्रण देने के समय में ही - ये सब बातें क्यों न जना दीं जिस से इन महात्माओं को अपने पास बुलाने का इतना कठिन कष्ट न दिया जाता और इन की आत्म-समाधि में नाहक का विघ्न डालकर मैं पाप का हिस्सेदार भी न बनता !" थानसिंह, अकबर के मुंह के सामने टगर टगर देखने लगा और इस का क्या उत्तर दिया जायँ यह सोचने लगा। कुछ ही मिनिट

---

* भूपोऽप्युवाचेति न साहिबाख्यखानेन युष्मभ्यमदायि किञ्चित्।
तुरङ्गामस्यन्दनदन्तियानजांबूनदाद्यं दृढमूष्टिनेव ॥ १८६ ॥
हीरसौभाग्य, १३ सर्ग।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बाद, बादशाह स्वयं फिर- थानसिंह को उद्दिश्य कर- बोला कि - "हॉ, मैं तेरी बनियासाई बाजी समझ गया हूं। तू ने खुद अपना मतलब साधने के इरादे से, इन बातों से मुझे अज्ञान रक्खा है। क्यों कि सूरिमहाराज आज तक कभी इधर नहीं आये इस लिये उन की सेवाशुश्रूषा करने का महान लाभ तेरे जैसे गुरु-भक्त को नहीं मिला। मेरे बुलाने से जो सूरिमहाराज का इधर आगमन हों और जिस का लाभ विशेष कर तूझे और तेरे जातिभाईयों को मिले, तो इस से अधिक सौभाग्य की बात, तुमारे लिये, और क्या हो सकती है ?" बादशाह के इन वचनों से सारा ही सभा-मण्डल खुश खुश हो गया।

अकबर ने सूरिजी से रास्ता का हाल जानना चाहा परन्तु उस का ठीक उत्तर उन की ओर से न मिलता देख, पास के किसी अधिकारी को पूछा कि "'सूरिमहाराज को लेने के लिये कौन आदमी गये थे ? - जो गये हो उन्हें यहां बुलाओ।" अधिकारी ने जवाब दिया कि - "हुजूर मौन्दी और कमाल नाम के, आप के खुद दूत गये थे । बुलाने पर वे तुरन्त हाजर हुए। बादशाह ने उन से सूरिमहाराज की सारी मुसाफिरी का हाल पूछा। उन्हों ने क्रम से, संक्षेप में, वे सब बातें कह सुनाई जो सूरिजी के साथ चलते हुए रास्ते में उन्हों ने अनुभूत की थीं। वे बोलेः- "हुजूर। ये महात्मा, आज कोई लगभग छः महिने हुए गंधार- बंदर से पैदल ही चले आ रहे हैं। अपना जितना सामान है सारा आप ही उठा कर चलते हैं। और किसी को नहीं देते। भिक्षा, गॉव में से, घर घर से. मांग लाते हैं और जेसा मिला वैसा खा लेते हैं। अपने निमित्त बनी हुई किसी चीज को छूते तक भी नहीं। सदा नीचे जमीन पर ही सोते हैं। रात को कोई भी वस्तु मुंह में नहीं डालते। चाहे कोई इन्हें पूजे और चाहे कोई गालियां दे, इन के मन दोनों समान हैं। ना किसे कभी वर देते हैं और नाही कभी शाप।" इत्यादि बातें सुन कर अकबर के साथ सारा ही दरबार आश्चर्य और आनंद में निमग्न हो गया। अकबर सूरिमहाराज पर मुग्ध हो गया और अनेक प्रकार से उन की प्रशंसा करने लगा।

× मौन्दी–कमालाविति नामधेयौ निदेशतः शासनहारिणौ वः।
इतोऽजिहातामिव मूर्तिमन्तौ लेखौ वलेखाविव कामचारौ ॥

हीरसौभाग्य काव्य, १३—२०७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस तरह परस्पर आलाप-संलाप होने के बाद अकबर अकेले सूरिजी को एकान्त- महल में ले गया और अन्यान्य सभ्यों को, शांतिचन्द्र आदि मुनिवरों के साथ विद्वद्गोष्ठी करने की आज्ञा दे गया। उस एकान्त – भवन में सूरिमहाराज ने अकबर को अनेक प्रकार का धर्मोपदेश दिया। ईश्वर, जगत्, सुगुरु और सद्धर्म के विषय में भिन्न भिन्न दृष्टि से सूरिजी ने अपने विचार प्रदर्शित किये जिस से अकबर के दिल में बहुत कुछ संतोष हुआ। अभी तक तो वह सूरिजी के चारित्र पर ही मुग्ध हो रहा था परन्तु अब तो उन की विद्वत्ता का भी वह क़ायल हुआ। धर्म संबंधी बातचीत हो चूकने पर, अकबर ने सूरिजी की परीक्षा करने के लिये पूछा कि "महाराज ! आप सर्वशास्त्र के पारगामी हैं- आप से कोई बात छीपी नहीं है। इस लिये कृपा कर कहिए कि- मेरी जन्म कुंडलि में, मीन राशि पर जो शनैश्चर आया हुआ है, उस का मुझे क्या फल होगा।*" सूरिजी बोलेः - "पृथ्वीश ! यह फलाफल बताने का काम गृहस्थों का है। जिन्हें अपनी आजीविका चलानी होती है वे इन बातों का ज्ञान प्राप्त करते हैं। हमें तो केवल मोक्ष मार्ग के ज्ञान की अभिलाषा रहती है जिस से वह जिन शास्त्रों से प्राप्त हो सकता हों। उसी के विषय में हमारा श्रवण, मनन और कथन हुआ करता है ।" अकबर ने अनेक वार इस प्रश्न का उच्चारण किया परंतु सूरिजी इसी एक उत्तर के सिवा और कुछ भी अक्षर नहीं बोले। सायंकाल का समय हो आया देख कर बादशाह और मुनीश्वर अपने स्थान से ऊठे और सभा मंडप में पहुंचे। इधर भी शेख अबुल-फजल और अन्यान्य विद्वान् सूरिजी के शिष्यों के साथ अनेक प्रकार के वार्ता-विनोद और धर्म-विवाद कर आनन्दित हो रहे थे। नृपति और मुनिपति के आते ही सब मौन हुए। बादशाह ने अबुल-फजल को लक्ष्य कर सूरिजी की विद्वत्ता, निःस्पृहता और पवित्रता की बहुत बहुत सराहना की। शेखने भी सूरिमहाराज के शिष्यों की बडी तारिफ की। सभा में बादशाह ने सूरिजी के शिष्यों की संख्या पूछी

---

* पुरेऽनयीवावनिमानुपेयिवान् य एष मीने तरणेस्तनूरुहः।
स मत्सरीवापकरिष्यति प्रभो क्षितेः पतीनामुत नीवृतां किमु ॥

× गुरु र्जगौ ज्यौतिषिका विदन्त्यदो न धार्मिकादन्यदवैमि वाङ्मयात्।
यतःप्रवृत्तिर्गृहमेधिनामियं न मुक्तिमार्गे पथिकीबभूवुषाम् ॥

हीरसौभाग्य काव्य, सर्ग १४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परंतु सूरि महाराज ने "हां, कुछ थोडे से हैं" कह कर अपनी विभुता नहीं बताई। बादशाह ने पहले ही सुन रक्खा था कि सूरिमहाराज के दो हजार शिष्य हैं; इस लिये उसने आप ही उतने बताये, जिस का समर्थन थानसिंहने "जी हुजूर" कह कर किया। सभा में जितने शिष्य बैठे हुए थे उन के नाम बादशाहने पूछे, जिन का उत्तर एक दूसरे शिष्य ने, एक दूसरे का नाम बता कर दिया।

पद्मसुन्दर नामक- नागपुरीय तपागच्छी- जैन यति पर, अकबर का, पूर्वावस्था में बडा प्रेम था। अकबर उसे सदा अपने पास ही रखता था। उस के पुस्तकालय में हिन्दु-और जैनसाहित्य की बहुत पुस्तकें थी। यति के मर जाने पर वे सब पुस्तकें अकबर ने अपने महल में रक्खी थीं; यह विचार कर कि जब कोई सब से अच्छा महात्मा मुझे मिलेगा तब उसे ये भेंट करूंगा। अकबर की दृष्टि में हीरविजयसूरि सर्वोच्च साधु मालूम दिये इस लिये उसने अपने बडे पुत्र युवराज सलीम सुलतान द्वारा वे सब पुस्तकें महल में से वहां पर मंगवाईं। खानखाना नामक अफसर ने पेटियों में से पुस्तकें निकाल निकाल कर बादशाह के सामने रक्खी । बादशाह ने सूरिजी से, पुस्तकों का पूर्व-इतिहास कह कर उन्हें लेने की प्रार्थना की। अकबर बोला कि- "आप सर्वथा निःस्पृह महात्मा हैं इस लिये और कोई मेरे पास ऐसी चीज नहीं है जो आप को भेंट करने योग्य हों। केवल एक मात्र ये पुस्तकें ही ऐसी हैं जो आप को ग्राह्य हों। इस लिये इन्हें स्वीकार कर मुझे उपकृत कीजिए।" सूरिजी ने पुस्तकें लेने का इनकार कर कहा कि- "राजेश्वर ! हम लोगों को जितनी पुस्तकें चाहिये उतनी तो हमारे पास हैं। फिर इन्हें, बिन जरूरत, ले कर हम क्या करें ? यह भी एक प्रकार का परिग्रह ही है परंतु आत्मसाधन में मुख्य सहायक होने के कारण इन का रखना हमारे लिये उचित है। परंतु, आवश्यकता से अधिक रखना ममत्व का कारण होने से हमें इन पुस्तकों की जरूरत नहीं है।" सूरिमहाराज के बहुत इनकार कर ने पर भी अन्त में अबुल-फजल ने बीच में पड कर उन्हें पुस्तकें लेने से बाध्य किये। सूरिजी ने उन का सादर स्वीकार कर "अकबरीय-भाण्डागार" के नाम से आगरे में रख दीं।

× गृहादथानायितमञ्जनन्मना स खानखानेन च मुक्तमग्रतः।
महीमरुत्वान्प्रमदादिवोपदां मुनीशितुर्ढौकयति स्म पुस्तकम्।

हीरसौभाग्य काव्य, सर्ग १४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समय हो जाने से सूरीश्वर ने स्वस्थान पर जाने की इजाजत मांगी। बादशाह ने थानसिंह को बुला कर कहा कि "मेरे जो खुद शाही बाजे हैं उन के साथ, बडी धूमधाम पूर्वक, मुनीश्वर को अपने स्थान पर पहुंचा दो*।" शाही हुक्म होते ही सब तैयारी की गई। शाहीफौज, बडे बडे अफ़सर और अनेक प्रकार के वादित्रों के साथ सूरिमहाराज़ अपने स्थान पर पहुंचे। जैन लोगोंने इस बात की बडी भारी खुशी मनाई और हजारों रूपयें गरीब- गुरबों को बाँट दिये गये।

कुछ दिन फतहपुर ठहर कर मुनीश्वर चातुर्मास करने के लिए आगरा को गये। संवत् १६३९ का चातुर्मास वहीं बिताया। मार्गशिर महिने में सूरिजी शोरीपुर- तीर्थ की यात्रा करने को गये। कुछ समय तक इधर उधर घूम कर फिर वापस आगरा आये। वहां पर चिंतामणि-पार्श्वनाथ की प्रतिष्ठा की। थोडे दिन ठहर कर, आगरा से फिर फतहपुर पहुँचे। सूरिजी को शहर में आये सुनकर अकबर ने फिर उन से मिलने की इच्छा प्रकट की। अबुल-फजल के महलों में, दूसरी वार सूरि महाराज मुगल-सम्राट् से मिले। घंटों तक धर्म-चर्चा होती रही। सूरिजी ने प्रजा और प्राणियों के हित के लिये बादशाह को अनेक प्रकार का सद्बोध दिया। मद्य और मांस का सेवन नहीं करने के लिये भी उपदेश दिया गया। पहली मुलाकात के समय, सूरिजी की निःस्वार्थ वृत्ति ने अकबर के दिल में जिस सद्भाव के बीज को बोह दिया था वह इस समय की मुलाकात से अंकुरित हो गया। बादशाह बोला - "मुनीश्वर ! आपने जो जो बातें मुझे, अपने हित के लिये कही हैं वे बिल्कुल ठीक है और आप के कथन का मैं अबश्य आदर करूंगा। मैंने आप को बडी दूर से, बहुत कष्ट दे कर बुलाये हैं और आपने भी अपना परोपकार-भाव, यहां आकर स्पष्ट रूप से प्रकट किया है। आपने जो जो सदुपदेश मुझे दिये हैं वे अमूल्य है; मैं आप की इस कृपा का बडा ही ऋणी- कर्जदार- हूं। मेरी यह इच्छा है कि मेरे आधिपत्य में गाँव, नगर, देश, हाथी, घोडे, सुन्ना, चांदी आदि जितनी चीजें हैं उन में से जो आप की मर्जी में आवें उसे स्वीकार कर मेरे सिर पर से इस उपकार के

---

* मदीयतूर्यादिनिनादसादरं जगज्जनानन्दिमहेन मेदुरम्।
त्वमालयं लभ्भय साधुसिन्धुरं तटं शशीवामृतवाहिनीवरम्॥
हीरसौभाग्य काव्य, १४ सर्ग।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भार को कुछ कम कीजिए। सूरिमहाराज ने कहा - "शाहन्शाह ! मेरे जीवनोद्देश और मुनिधर्म से आप बहुत कुछ परिचित हो चुके हैं इस लिये इन चीजों के लेने का मुझ से आग्रह करना निरर्थक है। मुझे इच्छा है केवल आत्म-साधन करने की। इस से यदि वैसी चीज आप मुझे दें कि जिस से मेरा आत्म-कल्याण हों, तो मैं उसे बडे उपकार के साथ स्वीकार लूंगा।" बादशाह इस के उत्तर में क्या कह सकता था ? वह चुप कर गया। अकबर को मौन हुआ देख फिर मुनि महाराज बोले - "आप मुझे जो कुछ देना चाहते हैं उस के बदले में, मेरे कथन से, जो कैदी वर्षों से कैदखानें में पडे पडे सड रहे हैं, उन अभागे पर दया ला कर, छोड दीजिए। जो बेचारे निर्दोष पक्षी बेगुनाह पींजडों में बन्ध किये गये हैं उन्हें उडा दीजिए। आप के शहर के पास जो डाबर नाम का १२ कौस लंबा चौडा तालाब है, कि जिस में रोज हजारों जालें डाली जाती है, उन्हें बंध कर दीजिए। हमारे पर्युषणों के पवित्र दिनों में आप के सारे राज्य में, कोई भी मनुष्य, किसी प्रकार के प्राणि की हिंसा न करें ऐसे फरमान लिख दीजिए।" बादशाह ने कहा - "महाराज ! यह तो आप ने अन्य जीवों के मतलब की बात कही है। आप अपने लिये भी कुछ कहें* ।" सूरिजी ने उत्तर दिया - "नरेश्वर ! संसार के जितने प्राणि हैं उन सब को मैं अपने ही प्राणों के समान गिनता हूं। इस लिये उन के हित के लिये जो कुछ किया जायगा वह मेरे ही हित के लिये किया गया है; ऐसा मैं मानूंगा।" बादशाह ने सूरिजी की आज्ञा का बडे आदर-पूर्वक स्वीकार किया। वहां बैठे ही बैठे, कैदखाने में जितने कैदी थे उन्हें छोड देने का और पींजडों में जितने पक्षी थे उन्हें उडा देने का हुक्म दे दिया। डाबर तालाब में जालें डालने की मनाई भी की गई। पर्युषणों के आठ ही दिन नहीं परंतु उन में ४ दिन बादशाह ने अपनी ओर के भी मिला कर १२ दिन तक जीववध के बंध करने के ६ फरमान लिख दिये। जिन का ब्योरा इस प्रकार हैः - १ ला सूबे गुजरात का, २रा सूबे मालवे का, ३रा सूबे अजमेर का, ४था दील्ली और फतहपुर का, ५वा लाहोर और मुलतान का तथा ६ठा पांचों सूबों का, सूरिजी के पास रखने का। बादशाह बोलाः-

---

* इयं तु पूज्येषु परोपकारिता प्रसादनीयं निजकार्यमप्यथ।
तंमूचिवानेष यदङ्गिनोऽखिलानसूनिवावैमि ततः परोऽस्तु कः ॥

हीरसौभाग्य, स. १४, श्लो. १७९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पलाशतां बिभ्रति यातुधाना इवाखिला अप्यनुगामिनो मे ।
अमारिरेषां न च रोचते क्वचिन्मलिम्लुचानामिव चन्द्रचन्द्रिका ॥
शनैः शनैस्तेन मया विमृश्य प्रदास्यमानामथ सर्वथैव ।
दत्तामिवैतामवयान्तु यूयममारिमन्तर्महतेव कन्या ॥

हीरसौभाग्य, स.१४, प.१९९-२०० ।

"मुनीश्वर ! मेरे जितने अनुगामि - नौकर हैं वे सब मांसाहारी हैं इस लिये उन्हें यह जीवहत्या के बंध कर ने की बात रुचती नहीं है इस लिये मैं धीरे धीरे, इतने ही दिन नहीं परंतु और भी अधिक दिन आप को दूंगा-अर्थात् अधिक दिनों तक जीव बध न किया जाने के फरमान लिख दूंगा । पहले की तरह अब मैं शिकार भी न करूँगा । संसार के पशु- प्राणि सुखपूर्वक मेरे राज्य में, मेरी ही तरह रहें ऐसा काम करूंगा* ।" यह कह कर बादशाहने सूरिजी की परोपकारिता की वारंवार प्रशंसा की और उन्हें "जगद्गुरु " की महान् उपाधि (पद्वी) दी । कुछ बडे बडे कैदियों को अपने पास बुला कर सूरिजीके पगों में उन का मस्तक टिकवाया और उन्हें छोडे जाने का आनंद-समाचार सुनाया । बाद में अकबर वहां से उठ कर डाबर- तालाब के किनारे गया । साथ में सूरिजी के प्रधानभूत शिष्य धनविजयजी को ले गया । वहां पर उन की समक्ष, सब पक्षियों को पीजडों में से निकाल निकाल कर आकाश में उडा दिये । सूरिजी वहां से उठ कर शाही बाजों के बजते हुए अपने उपाश्रय में पहुंचे । श्रावकों ने उस समय जो आनंद और उत्सव मनाया उस का वर्णन नहीं किया जाता । मेडतीया शाह सदारंग ने, उस खुशाली में हजारों रूपये गरीब गुरबों को और सेंकडों हाथी घोडे याचकों को दान में दे दिये । शाह थानसिंह ने अपने बनवाये हुए मंदिर में जिनप्रतिमा की प्रतिष्ठा कराने के निमित्त बडा भारी महोत्सव प्रारंभ किया । प्रतिष्ठा के साथ श्रीशांतिचंद्रजी को "वाचक (उपाध्याय)" पद भी प्रदान किया गया । थानसिंह ने उस समय अगणित द्रव्य

---

* प्राग्वत्कदाचिन्मृगयां न जीवहिंसां विधास्ये न पुनर्भवद्भत् ।
सर्वेऽपि सत्त्वाः सुखिनो वसन्तु स्वैरं रमन्तां च चरन्तु मद्भत् ॥

× गुणश्रेणी मणिसिन्धोः श्रीहीरविजयप्रभोः ।
जगद्गुरुरिदं तेन बिरुदं प्रददे तदा ॥

हीरसौभाग्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यय किया। शाह दुज्जणमल्ल ने भी एक वैसा ही दूसरा प्रतिष्ठा महोत्सव किया। उस साल का- संवत् १६४० का- चातुर्मास्य सूरीश्वरने वहीं व्यतीत किया। पर्युषणा के दिनों में शाही हुक्म से सारे राज्य में, क्या हिंदू और क्या मुसलमान ? सभी के लिये जीव वध के मनाई के ढंढोरे पीटे गये। अशक्य जैसी बात का होना देख कर सभी लोगों को आश्चर्य हुआ। जैनधर्म की करुणा का प्रचंड प्रवाह, कुछ देर के लिये, सर्वत्र फैल गया। असंख्य प्राणियों को अभय-दान मिला। जैन प्रजा को फिर एक बार परमार्हत महाराजाधिराज श्रीकुमारपाल का स्मरण हो आया।

चतुर्मासी की समाप्ति अनंतर सूरीश्वर वहां से बिदा हुए। बादशाह की इच्छा से शांतिचन्द्र उपाध्याय वहीं रक्खे गये। जगद्गुरु आगरे हो कर मथुरा गये। और वहां के प्राचीन जैन-स्तूपों की यात्रा की। मथुरा से गवालियर पहुंचे। वहां के गोपगिरि-पर्वत पर आई हुई विशाल-काय और भव्याकृति जिनमूर्ति के, जो "बावनगजा" के नाम से प्रसिद्ध है, दर्शन किये। गवालियर से जगद्गुरु अलाहाबाद पधारे और सं० १६४१ का वर्षा-समय वहीं बिताया। शीत-काल में वहां से प्रयाण कर, रास्ते में ठहरते और असंख्य मनुष्यों को सदुपदेश देते पुनः आगरा आये। सं० १६४२ के वर्षाकीय चार महिने वहीं ठहरे। सूरिजी के उपदेश से लोगों ने अनेक धर्मकृत्य और पुण्य कार्य किये जिस से जैन धर्म की बडी प्रभावना हुई। हजारों हिन्दू और मुसलमानों ने मांसाहार और मद्यपान का त्याग किया।

सूरि महाराज की अवस्था इस समय कोई ६० वर्ष की थी। शरीर-स्थिति दिन प्रतिदिन शिथिल होती देख उन्हों ने वापस गुजरात में जाना चाहा और वहां के शत्रुंजय, गिरनार आदि पवित्र तीर्थों की यात्रा कर, वहीं पर किसी पावन स्थान पर शेष जीवन व्यतीत करना चाहा। सूरीश्वर ने अपनी यह इच्छा बादशाह से जनाई और गुजरात में जाने की इजाजत मांगी। साथ में आपने एक यह अर्ज भी बादशाह से कराई कि "गुजरात में शत्रुंजय, गिरनार, आबू, तारंगा वगैरह जो हमारे बडे पवित्र तीर्थ हैं उन पर, कितनेक अविचारी मुसलमान, हम लोगों के दिल को दुःख पहुंचे वैसा हिंसादि कृत्य कर, तीर्थ की पवित्रता को भ्रष्ट करते रहते हैं और उन पर अपना अनुचित हस्तक्षेप करते रहते हैं। इस लिये बादशाह की हुजूर में अर्ज है कि इन तीर्थों के विषय में एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐसा शाही फरमान हो जाना चाहिये कि जिस से कोई भी मनुष्य, उन तीर्थों पर किसी प्रकार का अनुचित दखल और अयोग्य काम न करने पावे।" कहने की आवश्यकता नहीं कि इस अर्जी के मुताबिक, शाही फरमान के लिखे जाने में कुछ भी विलम्ब हुआ हो। बादशाह ने अपने फरमान में केवल गुजरात के तीर्थों के विषय ही में नहीं परंतु बंगाल और राजपूताना में भी समेतशिखर (पार्श्वनाथ-पहाड) और केसरीया (धूलेव) वगैरह जितने जैनश्वेताम्बर-संप्रदाय के तीर्थ हैं उन में से किसी पर भी कोई मनुष्य अपना दखल न करे और कोई जानवर वगैरह न मारे तथा ये सब स्थान जैनाचार्य श्रीहीरविजयसूरि को सौंपे गये हैं; ऐसा लेख कर दिया;- (देखो फरमान - नं.२ रा) सूरिमहाराज, अकबर की अनुमति पा कर तथा इस फरमान को ले कर, अपने शिष्यों के साथ गुजरात की तरफ रवाना हुए।

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

ऊपर लिखा गया है कि - जगद्गुरु ने, फतहपुर से चलते समय बादशाह की इच्छानुसार श्रीशांतिचन्द्र उपाध्याय को वहीं पर- अकबर के दरबारही में - रख दिये थे। उसी दिन से उपाध्यायजी निरंतर बादशाह के पास जाने लगे और विविध प्रकार का उसे सदुपदेश देने लगे। प्रसंग वश और भी अनेक प्रकार का वार्तालाप होने लगा। शांतिचन्द्रजी बडे भारी विद्वान् और एक ही साथ एक सौ आठ अवधान करने की अद्भुत शक्ति धारण करनेवाले अप्रतिम प्रतिभावान् थे। उन्हों ने, इस के पहले, अपनी विद्वता और प्रतिभा द्वारा राजपूताना के अनेक राजाओं का मनोरंजन किया था। बहुत से विद्वानों के साथ वाद-विवाद कर जयपताका प्राप्त की थी। ईडर- गढ के महाराय श्रीनारायण की सभा में वहां के दिगंबर भट्टारक वादीभूषण के साथ विवाद कर उसे पराजित किया था। वागड के, घटशिल नगर में, वहां के अधिपति और जोधपुर के महाराज श्रीमल्लदेव के भ्रातृव्य, राजा सहसमल्ल की सन्मुख, गुणचंद्र नामक दिगंबराचार्य को भी परास्त किया था। इस तरह अनेक नृपतियों को उन्हों ने शास्त्रार्थ और शतावधानादि द्वारा अपने प्रति सद्भाव धारण करने वाले बनाये थे। अकबर भी उन की विद्वत्ता से बडा खुश हुआ। ज्यों ज्यों उस का परिचय उपाध्यायजी से अधिक होता गया त्यों त्यों वह उन पर विशेष अनुरक्त होता गया। बादशाह के सौहार्द और औदार्य से प्रसन्न हो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर उपाध्यायजी ने उस की प्रशंसा में इस "कृपारसकोश" की रचना की। १२८ पद्य के इस छोटे से काव्य में, अकबर के शौर्य, औदार्य और चातुर्य आदि गुणों का संक्षेप में, परन्तु बडी मार्मिकता से, वर्णन किया गया है। अकबर इस कृपारस का श्रवण द्वारा पान कर बहुत तृप्त हुआ। इस तृप्ति के उपलक्ष्य में, उस ने हीरविजयसूरि की जगत् की भलाई के वास्ते जो जो शुभ इच्छायें थी वे सब, उपाध्यायजी के कथन से, पूर्ण कीं। इस ग्रंथ के, अंत के, १२६-७ वें पद्यों में स्पष्ट लिखा है कि "इस बादशाह ने जो जजिया कर माफ किया, उद्धत मुगलों से जो मंदिरों का छुटकारा हुआ, कैदमें पडे हुए कैदी जो बंधन रहित हुए, साधारण राजगण भी मुनियों का जो सत्कार करने लगा, साल भर में छः महिने तक जो जीवों को अभयदान मिला और विशेषकर, गायें भैंसें बेल और पाडे आदि जो पशु कसाई की छुरि से निर्भय हुए; इत्यादि शासन की- जैनधर्म की समुन्नति के जगत्प्रसिद्ध जो जो कार्य हुए उन सब में यही ग्रंथ (कृपारस कोश) उत्कृष्ट निमित्त हुआ है - अर्थात् इसी ग्रंथ के कारण उपर्युक्त सब कार्य बादशाहने किये हैं।" १२१ वें पद्य का

भूयस्तरां परिचितेर्विदितस्वभावः
स्वामी नृणामयमयाचि मया कृपार्थम्।

यह पूर्वार्द्ध खास ध्यान खींचने लायक है। उपाध्यायजी कहते हैं कि- मैंने बादशाह के पास इन सुकृत्यों की जो याचना की है वह एकदम नहीं की। मेरा बादशाह से बहुत बहुत परिचय हुआ और मैंने उस के स्वभाव को ठीक ठीक जान लिया। जब बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ और मैंने यह निश्चित कर लिया कि इस समय इस से जो कुछ कहा जायगा वह स्वीकार करेगा तब, मैंने उस के पास प्राणियों के हित के लिये, इन बातों की याचना की।

बादशाह के ये सब कार्य कर देने पर, सूरिजी को इन की खुश खबर देने के लिये तथा उन के दर्शन करने के लिये उपाध्यायजी ने अकबर से गुजरात में जाने की इजाजत मांगी। शांतिचन्द्रजी ने, अपने ही समान विद्वान् और अपने खास सहाध्यायी भानुचन्द्र नामक पंडित को अकबर के दरबार में छोड कर, आप गुजरात को रवाना हुए। फतहपुर से चल कर कुछ महिनों की मुसाफिरी बाद उपाध्यायजी पट्टन पहुंचे और वहां पर जगद्गुरु के दर्शन किये। बादशाह के उन सब सुकृत्यों का हाल, जो उस ने उपाध्यायजी के कथन से किये थे,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूरिजी को कह सुनाया और वे फरमान पत्र भी उन के चरणों में भेंट किये जिन में जजिया कर के उठा देने का तथा वर्ष भर में छः महिने जितने दिनों तक जीव वध के न किये जाने का हाल और हुक्म था। सूरिजी को यह जानकर जितनी खुशी हुई उस का उल्लेख करने की इस लेखिनी में ताकत नहीं। वे उपाध्यायजी पर बडे प्रसन्न हुए और उन के इन कार्यों की बहुत बहुत प्रशंसा करने लगे। जो जो दिन जीव-वध के लिये निषिद्ध किये गये उन का जिक्र "हीरसौभाग्य-काव्य" (सर्ग १४) में इस प्रकार किया हुआ है -

श्रीमत्पर्युषणादिना रविमिताः सर्वे रवेर्वासराः
सोफीयानदिना अपीदविसाः संक्रान्तिघस्राः पुनः।
मासः स्वीयजनेर्दिनाश्च मिहिरस्यान्येऽपि भूमीन्दुना
हिन्दुम्लेच्छमहीषु तेन विहिताः कारुण्यपुण्यापणाः॥
तेन नवरोजदिवसास्तनुजजनू रजबमासदिवसाश्च।
विहिता अमारिसहिताः सलतास्तरवो घनेनैव॥

अर्थात् - पर्युषणा के १२ दिन, सभी रविवार, सोफीयान के दिन, ईद के दिन, संक्रान्ति के दिन, बादशाह के जन्म का सारा महिना, मिहिर के दिन, नवरोज के दिन और कुछ रजब महिने के दिन। इन सब दिनों की गिनती की जाय तो, सब मिल कर छः महिने जितने होते हैं।

महोपाध्याय श्रीधर्मसागरगणि ने भी अपनी "तपागच्छ- गुर्वावली" - जो संवत् १६४८ के आसपास बनाई गई है- में यह बात संक्षेप में परन्तु, स्पष्ट रूप से लिखी है-

"अथ पुरा श्रीसूरिराजै; श्रीसाहिहृदयालवालारोपिता कृपालतोपाध्याय श्रीशान्तिचन्द्रगणिभिः स्वोपज्ञकृपारसकोशाख्यशास्त्रश्रवणजलेन सिक्ता सती वृद्धिमती बभूव। तदभिज्ञानं च श्रीमत्साहिजन्मसम्बन्धी मासः, श्रीपर्युषणापर्वसत्कानि द्वादशदिनानि, सर्वेऽपि रविवासराः, सर्वसंक्रान्तितिथयः, नवरोजसत्को मासः, सर्व ईदीवासराः, सर्वे मिहिरवासराः, सोफीआनवासराश्चेति षाण्मासिकामारिसत्कं फुरमानं, जीजीआभिधानकरमोचनसत्कानि फुरमानानि च श्रीमत्साहिपार्श्वात्समानीय धरित्रीदेशे श्रीगुरूणां प्राभृतीकृतानीति। एतच्च सर्वं जनप्रतीतमेव।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपाध्याय श्रीशांतिचन्द्रजी के चले आने बाद भानुचंद्र और सिद्धिचंद्र- दोनों गुरु शिष्य - (जो बाणभट्ट की विश्वविख्यात कादंबरी के प्रसिद्ध टीकाकार हैं) अकबर के दरबार में रहे और शांतिचंद्र ही के समान बादशाह से सम्मानित हुए। भानुचंद्र ने अकबर को "सूर्यसहस्रनाम" पढाया। सिद्धिचंद्र भी शांतिचंद्र ही के समान शतावधानी थे इस से इन की प्रतिभा के अद्भुत प्रयोग देखकर बादशाह ने इन्हें "खुशफहेम" की मानप्रद पदवी दी। ये फारसी- भाषा के भी अच्छे विद्वान् थे इस लिये और भी बहुत से अकबर के दरबारियों के साथ इन की अच्छी प्रीति हो गई थी। इन गुरु-शिष्यों द्वारा विजयसेनसूरि, जो हीरविजयसूरि के उत्तराधिकारी आचार्य थे, की विद्वत्ता का हाल सुन कर अकबर ने उन्हें मिलने के लिये लाहोर बुलवाये। अकबर का यह आमंत्रण आया तब ये जगद्गुरु के साथ गुजरात के राधनपुर शहर में वर्षाकाल रहे हुए थे। हीरविजयसूरि ने इन्हें लाहोर जाने की आज्ञा दी और तदनुसार विहार कर वे वहां पहुंचे। बादशाह ने इन का भी यथेष्ट सन्मान किया और मुलाकात ले कर बडा खुश हुआ। लाहोर में इन्हों ने अकबर के आग्रह से, भानुचंद्रजी को उपाध्याय - पद प्रदान किया। इस पद्वी के महोत्सव में श्रावकों ने बडा भारी जलसा किया जिस में शेख अबुल-फजल ने भी ६०० रूपये और कितने ही घोडे आदि याचकों को दान में दिये।

श्रीमत्सूरिवरो व्यधत्त वसुधावास्तोष्प-
तेरागग्रहेणोपाध्यायपदस्य नन्दिमनघां श्रीभानुचंद्रस्य सः।
शेखो रूपकषट्शतीं व्यतिकरे तत्राश्वदानादि-
भिर्भक्तश्राद्ध इवार्थिनां प्रमुदितो विश्राणयामासिवान् ॥

हीरसौभाग्य।

विजयसेनसूरि ने अकबर के दरबार में बहुत से विद्वानों के साथ वाद कर विजय-पताका प्राप्त की। इन के शिष्य नन्दिविजय, जो भी अप्रतिम प्रतिभाशाली पुरुष थे, ने अकबर के सामने अति उत्कट ऐसे आठ अवधान किये। बादशाह के सिवा मारवाड के राजा मल्लदेव के पुत्र उदयसिंह, कच्छ के नृपति मानसिंह, खानखाना, शेख अबुलफजल, आजमखान और जालोर के गजनीखान आदि बहुत से राजा महाराजा और बडे बडे अफसर भी इस सभा में विद्यमान थे। नन्दिविजय का इस प्रकार का बुद्धि कौशल देख कर सभी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सभ्य बडे चकित हुए। बादशाह ने इन्हें भी 'खुशफहेम' की उपाधि से भूषित किया। यह जिक्र सं.१६५० का है।

इधर जगद्गुरु संवत् १६४९ के शीतकाल में पट्टन से शत्रुंजय- तीर्थकी यात्रा के लिये चले। पट्टन, राधनपुर, पालणपुर, अहमदावाद, खंभात आदि अनेक नगरों के हजारों श्रावक श्राविकायें और सेंकडों शिष्य सूरिजी के साथ हुए। सूरिजी के इस संघ की खबरें सब जगह पहुंची जिस से मालवा, मेवाड, मारवाड, दक्षिण, बंगाल, कच्छ और सिंध आदि सभी प्रदेशों के जैन-संघ तीर्थराज की यात्रा और जगद्गुरु के दर्शन के लिये शत्रुंजय की ओर रवाना हुए। फाल्गुन मास के आस पास सूरिजी शत्रुंजय पहुंचे। इस समय कोई छोटे बडे २०० संघ यहां पर एकत्र हुए जिनमें कोई ३ लाख मनुष्य थे। सूरिजी ने अपनी इस यात्रा का हाल पहले ही भानुचंद्र उपाध्याय के पास पहुंचा दिया था जिस से उन्हों ने अकबर के पास जा कर, उस समय राजकीय नियमानुसार प्रत्येक यात्री के पास से जो मस्तक-कर लिया जाता था उसे माफ करने का फरमान-पत्र लिख देने की अर्ज की। बादशाह ने तुरन्त वैसा फरमान लिख कर सूरिजी के पास भिजवा दिया जिस से वे सब लाखों यात्री बिना कोडी खर्च किये तीर्थाधिराज की दुर्लभ्य यात्रा कर सके। इस के पहले, इस तीर्थ की यात्रा करनेवाले प्रति मनुष्य को कभी कभी तो एक एक सुन्ना-महोर, (कर के रूप में) देने पर भी, इच्छित तया यात्रा नहीं हो सकती थी ! हीरसौभाग्य के कर्ता लिखते हैं कि-

प्राचीनजैननरपतिवारक इव निष्करे विमलशैले।
विदधुर्विधिना यात्रां तत्र मनुष्याः परोलक्षाः॥

यहां पर सूरि महाराज ने, १ शाह तेजपाल, २ शाह रामजी, ३-जसु ठक्कर, ४ शाह कुंवरजी और ५ शेठ मूला शाह; इन ५ धनिकों के बनाये हुए विशाल और उन्नत जिनमंदिरों की महान् महोत्सव के साथ आनंददायिनी प्रतिष्ठायें कीं। समग्र जैन प्रजा इस समय आनंद और हर्ष के समुद्र में सुखपूर्वक सफर करने लगी।

'कृपारसकोश' के साथ संबंध रखने वाले इतिहास का संक्षेप में उल्लेख हो चुका। इस उल्लेख से, प्रस्तुत-पुस्तक किसने, क्यों और कब बनाया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इत्यादि प्रश्नो के उत्तर भी, जो प्रत्येक पुस्तक- संपादक को देने आवश्यक हैं, दिये जा चुके। इस वृत्तांत से पाठकों को यह भी ज्ञात हो जायगा, कि अकबर जैसे महान् बादशाह के दरबार में भी जैन-आचार्य और जैन-विद्वान् अपनी साधुता और विद्वत्ता के कारण कैसा उच्च सत्कार और सन्मान प्राप्त कर सके थे। दूसरा, यह भी मालूम हो जायगा कि जैन साधु, जिन का जीवन केवल जगत् की भलाई के निमित्त और परोपकार के लिये सर्जन हुआ है, अपने उद्देश्य को किस तरह सफल करते थे। सचमुच ही जगद्गुरु श्रीहीरविजयसूरि ने अपने पवित्र-चरित्र और दैवी जीवन से जगत् के जीवों का बहुत बडा उपकार किया। उन्हों ने वह काम कर बताया जो नितान्त अशक्य और असंभव जैसा था ! जिन मनुष्यों में का सामान्य मनुष्य भी मांस खाये विना एक दिन भी चैन में नहीं निकाल सकता उन में के, एक दो को नहीं, परंतु लाखों मनुष्यों को और बडे बडे सत्ताधीशों को, महिनों तक मांस खाये विना रहने पडने वाला काम; तथा, जिन कत्लखानों में प्रतिक्षण हजारों प्राणियों के गले पर छुरी फरा करती और रक्त का प्रवाह चले करता, उन में, महिनों पर्यंत खून का एक बिन्दू तक भी नहीं गिरने वाला वृत्तांत, अशक्य और असंभव नहीं तो और क्या कहा जा सकता है ?

अकबर बादशाह ने इस प्रकार महिनों तक अपने राज्य में जीववध के न करने के जो मनाई हुक्म किये थे इस का जिक्र बरदाउनी जैसे प्रसिद्ध इतिहास-लेखक ने भी किया है -

"In these days (991=1583 A.D.) new orders were given. The killing of animals on certain days was forbidden, as on Sundays because this day is sacred to the Sun, during the first 18 days of the month of Farwardin; the whole month of Abein (the month in which His Majesty was born), and several other days to please the Hindoos. This order was extended over the whole realm and capital punishment was inflicted on every one who acted against the command."

(Badaoni. P.321.)

अर्थात् - "इन दिनों में (९९१ हीं०=सन् १५८३) नये हुक्म जारी किये गये। कितनेक दिनो में, जैसे कि, रविवार के दिनो में; क्यों कि ये दिन सूर्य के हैं, इस लिये पवित्र हैं; फरवर दीन महिने के पहले १८ दिनो में, अबेन महिना कि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिस में बादशाह का जन्म हुआ है, उस के सारे दिनों में तथा हिन्दुओं को खुश करने के लिये कितनेक और दिनों में भी, जीव हिंसा के निषेध का फरमान किया गया। यह फरमान सारे राज्य में किया गया था और जो कोई इस के विरुद्ध आचरण करे उसे गर्दन मार ने का हुक्म दिया गया था।" इस में जो "हिन्दुओं को खुश करने के लिये" लिखा गया है वहां हिन्दु शब्द से जैन ही समझने चाहिए। क्यों कि जैनलोक ही इस बात का (जीव वध का) निषेध कराने में सदा प्रयत्न किया करते हैं। वे आज भी भारतीय राजा महाराजाओं के तथा दयालु युरोपीय अधिकारियों के पास इस जीवदया के विषय में हजारों अर्जियें भेजते रहते हैं और लाखों रूपये प्रति वर्ष खर्च किया करते हैं।

अकबर ने जो फरमान जगद्गुरु हीरविजयसूरि को दिये थे उनमें से कितने ही आज भी विद्यमान हैं। इन फरमानों में से दो के चित्र इस पुस्तक के साथ लगाये गये हैं। पहला चित्र उस फरमान का है जिस में बादशाह ने पर्युषण के १२ दिनों में जीववध न करने का हुक्म किया है। ऊपर पृष्ठ १४ पर जिन ६ फरमानों का उल्लेख किया गया है उन्हीं में का यह दूसरे नंबर का-सूबे मालवे का- फरमान है। यह हाल में उज्जैन में रक्खा हुआ है। इस की लंबाई दो फुट और चौडाई १० इंच है। मोटे और मजबूत कपडे पर सुन्ने की शाही से लिखा हुआ है। संरक्षक की बेकदरी के कारण बहुत स्थानों पर जीर्ण- शीर्ण हो कर कुछ फट भी गया है तो भी मतलब सब अच्छी तरह पढ लिया जा सकता है। इस फरमान का अनुवाद मेजर जनरल सर जॉन मालकम (Malcolm) ने अपनी "मेमायर ऑव सेंट्रल इन्डिया (Memons (?) of Central India)" नामक पुस्तक की दूसरी जिल्द के पृष्ठ १३५-६ पर दिया है। पाठकों के ज्ञानार्थ हम, साहब के कथन के साथ उक्त अनुवाद को यहां पर यथावत् उद्धृत किये देते हैं -

An application was made to me to prevent the slaying of animals during the Putchoossur, or twelve days which they hold sacred; and the original Firman of Akber (carefully kept by their high priest at Oojein) was sent for my perusal. The following is a literal translation of this curious document.

"In THE NAME OF GOD, GOD IS GREAT."

"Firman of the Emperor Julalo-deen Mahomed Akber, Shah, Padsha, Ghazee."

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"Be it known to the Moottasuddies of Malva, that as the whole of our desires consist in the performance of good actions, and our virtuous intentions are constantly directed to one object, that of delighting and gaining the hearts of our subjects, &c. :

We, on hearing mention made of persons of any religion or faith whatever who pass their lives in sanctity, employ their time in spiritual devotion, and are alone intent on the contemplation of the Deity, shut our eyes on the external forms of their worship, and considering only the intention of their hearts, we feel a powerful inclination to admit them to our association, from a wish to do what may be acceptable to the Deity. On this account, having heard of the extraordinary holiness and of the severe penances performed by Hirbujisoor and his disciples, who reside in Guzerat, and are lately come from thence, we have ordered them to the presence, and they have been ennobled by having permission to kiss the abode of honour.

"After having received their dismissal and leave to proceed to their own country, they made the following request : That if the King, protector of the poor, would issue orders that during the twelve days of the month Bhodon, called Putchoossur (which are held by the Jains to be particularly holy), no cattle should be slaughtered in the cities where their tribe reside, they would thereby exalted in the eyes of the world, the lives of a number of living animal would be spared, and the actions of his Majesty would be acceptable to God; and as the persons who made this request came from a distance, and their wishes were not at variance with the ordiances of our religion but on the contrary were similar in effect with those good works prescribed by the venerable and holy Musslman, we consented and gave orders that, during those twelve days called Putchoossur, no animal should be slaughtered.

"The present Sunudd is to endure for ever, and all are enjoined to obey it, and use their endeavours that no one is molested in the performance of his religious ceremonies.

Dated.7th Jumad ul Sani, 992 Hejirah."

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

MEMONS OF CENTRAL INDIA & MALCOLM
VOL. II. L C.135 & 136 (Foot note.)

अर्थ- जैनियोंने मुझसे प्रार्थना की कि पचूसर (पजूसण) के उन १२ दिनों में जिन कों वे पवित्र मानते हैं जीवों की हिंसा को रोका जाय और अकबर बादशाह का दिया हुआ असली फरमान जिस को उज्जैन में रहने वाले उन के बडे पुजारी ने यत्न से रक्खा था उन्हों ने मेरे देखने के लिये भेजा। इस अपूर्व पत्र का निम्न लिखित तर्जुमा है:-

ईश्वर के नाम से ईश्वर बडा है।

"महाराजाधिराज जलालुद्दीन अकबर शाह बादशाह गाजी का फरमान."

"मालवा के मुत्सद्दियों को विदित हो कि चूंकि हमारी कुल इच्छायें इसी बात के लिये हैं कि शुभाचरण किये जाय और हमारे श्रेष्ठ मनोरथ एक ही अभिप्राय अर्थात् अपनी प्रजा के मनको प्रसन्न करने और आकर्षण करने के लिये नित्य रहते हैं।

"इस कारण जब कभी हम किसी मत वा धर्म के ऐसे मनुष्यों का जिक्र सुनते हैं जो अपना जीवन पवित्रतासे व्यतीत करते हैं, अपने समय को आत्मध्यान में लगाते हैं, और जो केवल ईश्वर के चिन्तवनमें लगे रहते हैं तो हम उन की पूजा की बाह्य रीति को नहीं देखते हैं और केवल उनके चित्तके अभिप्राय को विचार के उनकी संगति करने के लिये हमें तीव्र अनुराग होता है और ऐसे कार्य करने की इच्छा होती है जो ईश्वर को पसंद हो। इस कारण हरिभज सूर्य (हीरविजयसूरि) और उन के शिष्य जो गुजरात में रहते हैं और वहां से हाल ही में यहां आये हैं उन के उग्रतप और असाधारण पवित्रता का वर्णन सुनकर हमने उन को हाजिर होने का हुक्म दिया है और वे आदर के स्थान को चूमने की आज्ञा पाने से सन्मानित हुये हैं। अपने देश को जाने के लिये विदा (रुखसत) होने के पीछे उन्हों ने निम्न लिखित प्रार्थना की:-यदि बादशाह जो अनाथों का रक्षक है यह आज्ञा दे दें कि भादों मास के बारह दिनों में जो पचूसर (पजूषण) कहलाते हैं और जिन को जैनी विशेषकर के पवित्र समझते हैं कोई जीव उन नगरों में न मारा जाय जहां उन की जाति रहती है; तो इससे दुनिया के मनुष्यों में उनकी प्रशंसा होगी। बहुत से जीव वध होने से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बच जायगे और सरकार का यह कार्य परमेश्वर को पसंद होगा। और चूंकि जिन मनुष्यों ने यह प्रार्थना की है वे दूर देश से आये हैं और उन की इच्छा हमारे धर्म की आज्ञाओं के प्रतिकूल नहीं है वरन उन शुभ कार्यों के अनुकूल ही है जिन का माननीय और पवित्र मुसंलमान ने उपदेश किया है। इस कारण हमने उन की प्रार्थना को मान लिया और हुक्म दिया कि उन बारह दिनों में जिन को पचूसर (पजूषण) कहते हैं किसी जीव की हिंसा न की जावे।

"यह सदा के लिये कायम रहैगी और सब को इस की आज्ञा पालन करने और इस बात का यत्न करने के लिये हुक्म दिया जाता है कि कोई मनुष्य अपने धर्म संबंधी कार्यों के करने में दुःख न पावे। मिती ७ जमादुलसानी सन ९९२ हिजरी।"

इस फरमान के देने का जिक्र एक और दूसरे फरमान में भी है। हीरविजयसूरि के बाद अकबर ने खरतरगच्छ के आचार्य जिनचंद्रसूरि को भी, बिकानेर के मंत्री कर्मचंद बच्छावत की, जो कुछ समय तक अकबर के सामाजिकाध्यक्ष थे, प्रेरणा से अपने पास बुलाये थे। उन का दिल भी राजी रखने के लिये बादशाह ने मुलतान के सूबे में, प्रतिवर्ष, आषाढ महिने के शुक्ल पक्ष के अंतिम ८ दिनों में जीववध के न करने का फरमान लिख दिया था+। यह फरमान प्रयाग की सुप्रसिद्ध हिन्दी मासिक-पत्रिका 'सरस्वती' के १९१२ के जून के अंक में (भाग १३, संख्या ६में) प्रकाशित हुआ है जिसे हम यहां पर तद्वत् प्रकट किये देते हैं। मूल फरमान फारसी में है और ऊपर शाही मुहर लगी हुई है। फारसी का अक्षरान्तर इस प्रकार है: -

"फ़र्मान जलालुद्दीन मोहम्मद अकबर बादशाह गाजी -

हुक्काम किराम व जागीरदारान व करोरियान व सायर मुत्सहियान मुहिम्मात सूबे मुलतान बिदानंद।

"कि चूं हमगी तवज्जोह ख़ातिर ख़ैरंदेश दर आसूदगी जमहूर अनाम बल काफ़फ़ए जाँदार मसरूफ़ व मातूफ़स्त कि तबक़ात आलम दरमहाद अमन बूदा बफ़रागे बाल बइबादत हज़रत एज़िद मुतआल इस्तग़ाल नुमायंद। ब क़ब्ले अज़ि मुरताज़ ख़ैरअंदेश जैचंदसूर ख़रतर गच्छ कि बफ़ैज़े मुलाज़िमत हज़रते

+ इस विषय का विशेष वृतान्त देखना हों तो, देखो, 'कर्मचंद्रप्रबंध.' (सिंघी सिरीझ, भारतीय विद्याभवन-मुंबई)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माशरफ़ इख़तिसास याफ़ता हक़ीक़त व ख़ुदा तलबी ओ ब ज़हूर पैवस्ता बूद। ओरा मशग़ूल मराहिम शाहंशाही फ़रमूदैम। मुशारन् इले है इल्तिमास नमूद कि पेश अर्जी हीरविजयसूरि सागर शरफ़ मुलाज़िमत् दरियाफ्ता बूद। दर हरसाल दोवाज़दह रोज़ इस्तदुवा नमूदा बूद कि दरां अय्याम दर मुमालिके महरूसा तसलीख़ जाँदारे न शवद। व अहदे पैरामून मुर्ग़ व माही अमसाले आँ न गरदद। व अज़रूय मेहरबानी व जाँ परवरी मुल्तमसे ऊदरज़ै क़बूल याफ्त्। अकनू उम्मेदवारम् कि यक हफ़्ते दीगर ईं दवागोय् मिस्ले आँ हुक्मे आली शरफ़ सुदूर याबद्। बिनाबर उमूम राफ़त हुक्म फ़रमूदैम् कि अज़ तारीख़े नौमी ता पूरनमासी अज़ शुक्ल पछ असाढ़ दर हर साल तसलीख़ जाँदारे न शवद्। व अहदे दर मक़ाम आज़ार जाँदार... मोरे न गरदद। व अस्ल ख़ुद आँनस्त कि चूँ हज़रते बै चूँ अज़ बराए आदमी चंदीं न्यामतहाय गूनागूं मुहय्या करदाअस्त। दर् हेच वक़्त दर् आज़ार जानवर न शवद्। व शिकमे ख़ुदरा गोर हैवानात न साजद। लेकिन बजैहत् बाज़े मसालह दानायान पेश तजबीज़ नमूदा अंद। दरीविला आचार्य्य जिनसिंहसूरि उर्फ़ मानसिंह ब अरज़ अशरफ अक़दस रसानीद् कि फ़रमाने कि क़ब्ल अर्जी बशरह सदर अज़ सुदूर याफ्ता बूद गुम शुदा। बिनाबराँ मुताबिक़ मज़मून हुमा फ़रमान मुजद्दद फ़रमान मरहमत फ़रमूदैम। मे बायद् कि हस्बुल मस्तूर अमल नूमदा ब तक़दीम रसानंद। व अज़ फ़रमूदह तख़ल्लुफ़ व इनहिराफ़ नवरज़ंद। दरीं बाब निहायत एत हमाम व कदगन् अज़ीम लाज़िम दानिस्ता तग़इयुर् ब तबद्दुल बक़वायद आँ राह न दिहंद। तहरीरन् फ़ीरोज़ रोज़ सी ब यकुम माह ख़ुरदाद् इलाही सन् ४९।

(१) "ब रिसालए मुक़र्रबुल हज़रत स्सुलतानी दौलत खाँ दर चौकी (उमदे उमरा)

(२) ज़ुबूदतुल आयान राय मनोहर दर नौबत वाक़या नवीसी ख़ाजा लालचंद"।

जोधपुर निवासी मुंशी देवीप्रसादजीने इस का अनुवाद हिन्दी में इस तरह किया है: -

फ़रमान अकबर बादशाह गाज़ी का।

"सूबे मुलतान के बडे बडे हाकिम, जागीरदार, करोडी और सब मुत्सद्दी (कर्मचारी) जान लें कि हमारी यही मानसिक इच्छा है कि सारे मनुष्यों और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीव-जन्तुओं को सुख मिले, जिससे सब लोग अमन चैन में रह कर परमात्मा की आराधना में लगे रहें । इससे पहले शुभचिन्तक तपस्वी जयचन्द्र (जिनचंद्र) सूरि खरतर (गच्छ) हमारी सेवा में रहता था । जब उस की भगवद्-भक्ति प्रकट हुई तब हमने उस को अपनी बडी बादशाही की मेहरबानियों मे मिला लिया । उसने प्रार्थना की इस से पहले हीरविजयसूरि ने सेवा में उपस्थित होने का गौरव प्राप्त किया था और हरसाल १२ दिन माँगे थे, जिन में बादशाही मुल्कों में कोई जीव मारा न जावे और कोई आदमी किसी पक्षी, मछली और उन जैसे जीवों को कष्ट न दे । उस की प्रार्थना स्वीकार हो गई थी । अब मैं भी आशा करता हूं कि एक सप्ताह का और वैसा ही हुक्म इस शुभचिन्तक के वास्ते हो जाय । इस लिये हमने अपनी आम दया से हुक्म फ़रमा दिया कि आषाढ शुक्लपक्ष की नवमी से पूर्णमासी तक साल में कोई जीव मारा न जाय और न कोई आदमी किसी जानवर को सतावे । असल बात तो यह है कि जब परमेश्वर ने आदमी के वास्ते भाँति भाँति के पदार्थ उपजाये हैं तब वह कभी किसी जानवर को दुख न दे और अपने पेट को पशुओं का मरघट न बनावे । परन्तु कुछ हेतुओं से अगले बुद्धिमानों ने वैसी तजबीज़ की है । इन दिनों आचार्य्य जिनसिंह उर्फ मानसिंह ने अर्ज़ कराई कि पहले जो ऊपर लिखे अनुसार हुक्म हुआ था वह खो गया है । इस लिये हमने उस फ़रमान के अनुसार नया फ़रमान इनायत किया है । चाहिए कि जैसा लिख दिया है वैसा ही इस आज्ञा का पालन किया जाय । इस विषय में बहुत बडी कोशीश और ताकीद समझ कर इस के नियमों में उलट फेर न होने दें । ता. ३१ ख़ुरदाद इलाही, सन् ४९ ।

हज़रत बादशाह के पास रहने वाले दोलतखाँ के हुक्म पहुंचाने से, उमदा अमीर और सहकारी राय मनोहर की चौकी और ख्वाज़ा लालचंद के वाकिया (समाचार) लिखने की बारी में लिखा गया"।

हीरविजयसूरि को इनायत किये गये १२ दिनों का स्वीकार अकबर के कितने ही उत्तराधिकारियों ने भी किया था । ऐसा बहुत से ऐतिहासिक प्रमाणों द्वारा जाना जाता है परंतु उन के यहां पर देने की जगह नहीं । राजपूताना और मालवे के देशी राजा महाराजाओं ने भी अकबर का अनुकरण किया था और अपने राज्य में पर्युषणों के दिनो में जीवहिंसा की निषेधात्मक उद्घोषणा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अकबर बादशाह का फरमान
(नंबर-३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिवर्ष कराते थे। उदाहरण के तौर पर मालवे की धार-रियासत को ले लीजिए जहां पर आज भी इस नियम का अच्छी तरह पालन किया जाता है।

दूसरा फोटू उस फरमान का है जिस में शत्रुंजयादि तीर्थों के, हीरविजयसूरि के स्वाधीन करने का जिक्र है। इस बात का उल्लेख ऊपर पृष्ठ २० पर किया गया है। यह फरमान अहमदाबाद में, आनन्दजी कल्याणजी नाम की जैन-तीर्थ संरक्षक संस्था के स्वाधीन में है। यह २ फुट लंबा और १ फुट ५ इंच चौडा है। यह भी सौवर्णाक्षरों से सफेद वस्त्र पर लिखा हुआ है। ऊपर बाईं तरफ शाही मुहर लगी हुई है (जिस का भी जुदा फोटू, 'एन्लार्ज' करा कर, पाठकों को देखने लिये लगाया गया है) इस फरमान का अंग्रेजी अनुवाद, राजकोट (काठियावाड) के राजकुमार कॉलेज के मुंशी महम्मद अब्दुल्लहने किया है जो नीचे दिया जाता है।

Firman of Jelalooddeen Mahomed Akbar Badsha the Victorious.

GOD ALMIGHTY

Glory of religion and World, Akber Badsha, the son of Humayoon Badsha, the son of Babar Badsha, the son of Shaik Omer Mirza, the son of Sultan Aboo Syud, the son of Sultan Mahmed Mirza, the son of Meerun Shah, the son of Tymoor, the Lord of happy conjunction (Jupiter and Venus)

Be it known to the officers of the present and future times, and to the Governors, Tax Collectors and the Jagirdars of the Soobas of Malwa and Shah Jehanabad, the Metropolis of Lahore, the seat of royalty of mooltan the place of peace and tranquility of Ahmedabad and of Ajmere, the place of goodness and of Meerut, Gujarat and the Sooba of Bengal and of other territories under our Government,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Whereas the whole of our noble thought and attention is directed to attend to the wishes, and seek the pleasure of subjects; and the sole aim of our mind which wishes well of all is to secure love and affection of the people and the ryots who are the noblest trust (committed to our charge) of the Lord the great bestower of bounties, and where as our mind is especially occupied in searching for the men of pure hearts and those that are devotional, therefore whepever tidings of a person passing his valuable time solely in the remembrance of God comes to our ear from any quarter of the territories subject to our dominion, we become extremely desirous of ascertaining his virtues and intrinsic merits, without any regard to his religioun, faith or creed and by laudable means and honorable manner we bring him from afar, admit him in to our presence and enjoy the pleasure of his company.

As many a time the accounts of the Godliness and austere devotion of Heer bijoy Soor, an Acharj (preceptor) of the Jain Sitambury religioun and those of his disciples and followers who live at the ports of Gujarat, had come to our noble ear, we sent for and called him. After the interview which made us very glad, was over he intended to take leave in order to return to his original and native country. He therefore requested that by way of extreme kindness and favour a royal mendate which is obeyed by all the world, be issued to the effect that the heaven reaching mountains of Sidhachalji, Girnarji, Tarungaji, Kesarianathji and Abooji, situated in the country of Gujarat and all the five mountains of Rajgiriji, and the mountain of Samed shikherji allas Parashnathaji, situated in the Country of Bengal, and all the cotees and all temples below the mountains and all the places of worship and Pilgrimage of the Jains Situmbary Religioun throughout our Empire wherever they may be, be in his possession, and that no one can slaughter an animal on those mountains in the temples or below or above them. As he had come from a long distance and in truth his request was just and proper, and appeared not to be Repugnath to the Mahomedan Law it being the rule of

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

learned to respect and preserve all religions and as it became evident upon inquiry and after thorough investigation that all those mountains and places of worship really belong to the Jain Setambari religion from a long space of time; therefore we comply with his request, and grant to and bestow upon Heer bijoy Soor, Acharj of the Jain Setambury religioun, the mountain of Sidhachal, the mountain of Girnar, the mountain of Tarunga, the mountain of Keshrianath, and the mountain of Aboo lying in the country of Gujarat, and the five mountains of Rajgir, and the mountain of Samed shikhur, allas Pareshnath situated in the country of Bengal and all the places of worship and pilgrimage below the mountains and whereever they may be any places of worship appertaininig to the Jain Setambary religioun throughout our empire. It is proper that he should perform his devotion with his ease of mind.

It may be obvious that although these mountains and places of worship and pilgrimage the places of the Jains Setambari religion have been given to Heer bijoy Soor, yet in reality they belong to the Jain Setambari religion.

Let the orders of his everlasting firman shine like the Sun and the Moon amongst the followers of the Jain Setambari religion so long as the Sun, the illuminator of the Universe, continues to impart light and brightness to the day, and the Moon remains to give splendour and beauty to the night. Let no one offer any opposition or raise any objection to the same, and let nobody slaughter an animal on, below or about the mountains, and in the places of worship and pilgrimage. Let the orders of this Firman, obeyed by all the world, be acted upon and carried out, and let none depart from the same, or demand a new sanad. Dated, the 7th of the month Urdi Bihisht, corresponding with the month Rabeool-Awal of the thirty seventh year of the auspicious reign."

Rajkumar College.
Rajkotee,
11th November. 1875

Translated by
ME. MAHOMED ABDOOLLAH MOONSHI.
of the Rajkumar College.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हिन्दी-भावार्थः -

सर्वशक्तिमान् परमेश्वर।

शूरवीर तैमूरशाह का बेटा मीरनशाह, उस का बेटा सुलतान महम्मद मीरजा, उस का बेटा सुलतान अबू सैयद, उस का बेटा शेख उमर मीरजा, उस का बेटा बाबर बादशाह, उस का बेटा हुमायुन बादशाह, उस का बेटा अकबर बादशाह, जो दीन और दुनिया का तेज है।

जलालुद्दीन मोहम्मद अकबर बादशाह गाज़ी का फरमान।

सूबे मालवा, शाहजहानाबाद, लाहोर, मुलतान, अहमदाबाद, अजमेर, मेरट, गुजरात, बंगाल तथा मेरे ताबे के और सभी मुल्कों में, अब जो मौजूद हैं तथा पिछे से जो नियत किये जाय उन सभी सूबेदारों, करोडियों और जागीरदारों को सूचित किया जाता है कि:-

हमारा कुल इरादा अपनी प्रजा को खुश करने का और उस के दिल को राजी रखने का है। तथा हमारा अंतःकरण पवित्र-हृदय वाले और ईश्वरभक्त, सुजनों की शोध करने में निरंतर लगा रहता है। इस लिये, अपने राज्य में रहे हुए ऐसे साधुपुरुष का जब कभी हम नाम सुनते हैं तो तुरन्त उन्हें बडे आदर के साथ अपने पास बुलवाते हैं और उन की सत्संगति कर आनंद प्राप्त करते हैं।

हमने, गुजरात में रहने वाले जैनश्वेताम्बर संप्रदाय के आचार्य हीरविजयसूरि और उन के शिष्यों के विषय में बहुत वक्त सुना था कि वे बडे पवित्रमनवाले साधुपुरुष हैं। इस लिये हमने उन को अपने दरबार में आने का आमंत्रण किया। उन के दर्शन से हमें बहुत खुशी हुई। जब वे वापस अपने देश को जाने लगे तब यह अर्ज गुजारी कि- "गरीब पर्वरी की राह से एक ऐसा आम हुक्म हो जाना चाहिए, कि सिद्धाचलजी, गिरनारजी, तारंगाजी, केशरियानाथजी और आबूजी के तीर्थ, जो गुजरात में हैं, तथा राजगृहिजी के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

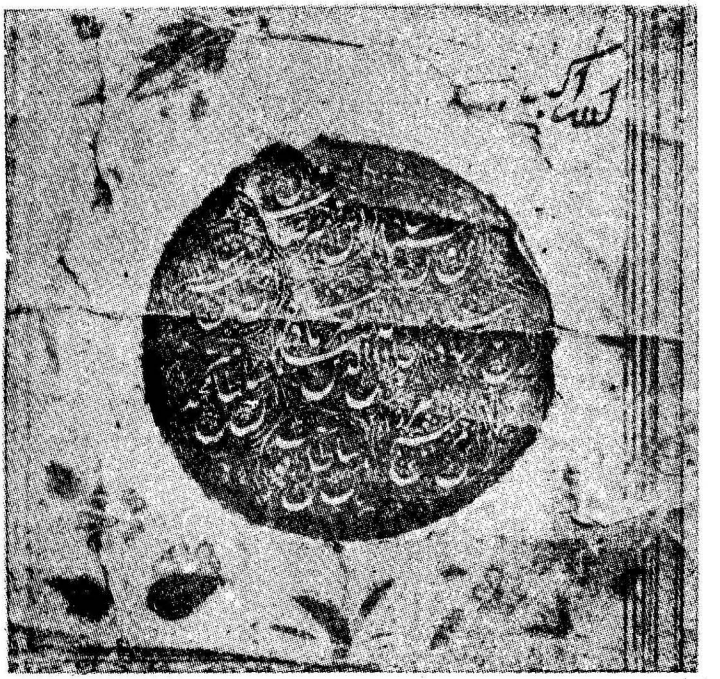

अकबर बादशाह की मुहर,
जो नंबर दूसरे वाले फरमान में ऊपर बाईं
तरफ लगी हुई है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पांच पहाड और सम्मेतशिखरजी उर्फ पार्श्वनाथ पहाड जो बंगाल में हैं; उन सभी पहाडों के नीचे, सभी मंदिरों की कोठियों के पास तथा और सभी भक्ति करने की जगहों, जो जैनश्वेताम्बर धर्म की हैं, उन की चारों ओर, कोई भी आदमी किसी जानवर को न मारें।" ये (महात्मा) दूर देश से आये हैं। इन की अर्ज यथार्थ है। मुसलमान धर्म से भी इन की याचना विरुद्ध नहीं है। क्यों कि महान् पुरुषों का यह नियम होता है कि वे किसी धर्म में अपना दखल नहीं करते। इस लिये हमारी समझ में यह अर्जी दुरस्त मालूम दी। तहकीकात करने से भी मालूम हुआ कि ये सभी स्थान बहुत अर्से से जैन श्वेताम्बर धर्म ही के हैं। अतएव इन की यह अर्ज मंजूर की गई है। और "सिद्धाचल, गिरनार, तारंगा, केशरीया और आबू के पहाड जो गुजरात में हैं, तथा राजगृहि के पांच पहाड और सम्मेतशिखर ऊर्फ पार्श्वनाथ पहाड जो बंगाल में हैं, तथा और भी जैनश्वेताम्बर संप्रदाय के धर्मस्थान जो हमारे ताबे के मुल्कों में हैं वे सभी जैनश्वेताम्बर संप्रदाय के आचार्य हीरविजयसूरि के स्वाधीन किये जाते हैं। जिस से शांतिपूर्वक ये इन पवित्र स्थानों में अपनी ईश्वरभक्ति किया करें।"

यद्यपि इस समय ये स्थान हीरविजयसूरि को दिये जाते हैं परंतु वास्तव में हैं ये सब जैनश्वेताम्बर धर्मवालों ही के, और इन्हीं की मालिकी के हैं।

जब तक सूर्य से दिन और चाँद से रात रोशन रहे तब तक यह शाश्वत फरमान जैनश्वेताम्बर धर्मवालों में प्रकाशित रहें। कोई भी मनुष्य इस फरमान में दखल न करें। इन पर्वतों की जगह- नीचे, ऊपर, आसपास, सभी यात्रा के स्थानों में और पूजा करने की जगहों में कोई, किसी प्रकार की जीवहिंसा न करें। इस हुक्म पर गौर कर अमल करें। कोई भी इस से उलटा वर्ताव न करें तथा दूसरी नई सनद न मांगे। लिखा तारिख ७मी माहे ऊर्दी बेहेस्त मुताबिक रवीऊल अवल सन ३७ जुलसी।

बादशाही फरमानों में, ऊपर के भाग पर, बहुत करके वैसे ही चित्र चित्रित किये जाते हैं जैसे प्रथम नंबर वाले फरमान में दिखाई देते हैं। परंतु इस फरमान में और ही प्रकार के दृश्य दृष्टिगोचर होते हैं। मुख्य कर मध्य का जो चित्र है वह एक देव-मंदिर के आकार का सा है। शायद यह इस लिये बनाया गया हो कि, यह फरमान खास कर देवमंदिरों की ही रक्षा के निमित्त दिया गया है इस लिये उस अर्थ का सूचक यह चित्र ऊपर चित्रित कर दिया गया हो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन दोनों फरमानों के छाया - चित्र हमें शांतमूर्ति श्रीमान् मुनि हंसविजयजी महाराज की कृपा से प्राप्त हुए हैं। एतदर्थ आप को अनेक धन्यवाद। सुना जाता है कि ऐसे और भी कितने ही बादशाही फरमान तपगच्छ के मुख्य गद्दीधर आचार्य के पास मौजूद है परंतु संरक्षकों में सामयिक शिक्षा का अभाव होने से वे बेचारे अभी तक, जीर्ण-सदूंकों के अंदर, शोचनीय हालत में, कैद पडे हुए हैं। कोई साहित्य-रसिक उन्हें सुंदर स्वरूप में सज कर, जगत् के प्रकाशित प्रदेश में स्थापन करें तो जैनधर्म की विभुता में और भी अधिक वृद्धि होगी। अस्तु।

जगद्गुरु श्रीहीरविजयसूरि के इन पुण्यावदातों का उल्लेख सेंकडों ही शिला-लेखों और सेंकडों ही ग्रंथों में बडी विशद रीति से किया गया है (- देखो, मेरी संपादित, 'प्राचीनजैनलेखसंग्रह' आदि पुस्तकें) जिन में से संक्षेप में और केवल प्रकृत पुस्तकोपयोगी हाल हमने यहां पर दिया है। जिन जिज्ञासुओं को इन महात्माका संपूर्ण वृत्तांत जानने की जिज्ञासा हों वे, जगद्गुरु काव्य, हीरसौभाग्य काव्य, विजयप्रशस्ति काव्य, विजयदेवमहात्म्य और पट्टावली आदि ग्रंथ देखें। ये सब ग्रंथ जगद्गुरु के जीवनकाल में या थोडे ही वर्षों बाद रचे गये हैं। इस लिये इन की प्रामाणिकता में कुछ भी संदेह नहीं हैं। अकबर बादशाह के विश्वासु और प्रिय प्रधान शेख अबुल-फजल ने भी अपनी आईन-ए-अकबरी नामक प्रसिद्ध पुस्तक में लिखा है कि- बादशाह के दरबार के जितने विद्वान् थे वे सब ५ वर्गों में विभक्त किये गये थे। उन में हीरविजयसूरि प्रथम वर्ग के विद्वान् थे। (Ain-i-Akbari, vol.1, Pages 531 & 547.) इस से भी ज्ञात होता है कि सूरिजी का सन्मान अकबर के दरबार में बहुत अच्छा हुआ था।

इस कृपारस कोश की केवल एक ही प्राचीन प्रति प्राप्त हुई है और उसी के आधार पर यह मुद्रित किया गया है। प्रति कुछ विशेष अशुद्ध होने से कहीं कहीं अशुद्धता और एक दो जगह अपूर्णता भी रह गई है। मुनिमहाराज श्रीवल्लभविजयजी के पास से एक दूसरी भी प्रति उपलब्ध हुई परंतु वह प्रथम ही की नकल मात्र थी। ग्रंथकर्ता के विद्वान् शिष्य रत्नचंद्र उपाध्याय ने इस कृपारसकोश पर संस्कृत टीका बनाई है परंतु वह अभी तक कहीं उपलब्ध नहीं हुई। इस पुस्तक के अंत में, हिन्दी में, संक्षिप्त - भावार्थ भी लगा दिया गया है जिस से संस्कृत नहीं जानने वाले भी इस ग्रंथ का तात्पर्य जान सकेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंत में एक शुभाशा का उल्लेख कर इस वक्तव्य को समाप्त किया जाता है। विक्रम की सतरहवीं शताब्दी भारत के इतिहास में सदा प्रकाशित रहेगी। जैनियों के हीरविजयसूरि, महाराष्ट्रियों में संत तुकाराम और उत्तर के हिन्दियों में भक्त तुलसीदास जैसे धर्मवीर तथा क्षत्रियमुकुटमणि महाराणा प्रतापसिंह और मुगल सम्राट बादशाह अकबर जैसे कर्मवीर पुरुष, अपने पवित्र धर्म और कर्म से इसी सदी के सौभाग्य को समुन्नत कर गये हैं। जगद्विजयिनी भारतजननी से सानुनय-विनय है कि वह एक बार फिर ऐसे तेजोमय आत्माओं को अवतार दे जिस से दिन प्रतिदिन निस्तेज होते जाते हुए हम भारतियों के धर्म और कर्म पुनः प्रज्ज्वलित हों और ऐहिक तथा पारलौकिक कर्तव्यों में पूर्ववत् फिर हम संसार-समुद्र के मार्गदर्शक दिव्यदीप बनें। शमस्तु।

जैन-उपाश्रय,

बडौदा।

मुनि जिनविजय।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्हम्

श्रीमदकबरबादशाहप्रतिबोधकृते

महोपाध्यायश्रीशान्तिचन्द्रकृतः

कृपारसकोशः ।

येनादर्शि जगत्करामलकवज्ज्ञानात्मना चक्षुषा
येन ज्ञानमयेन विश्वमखिलं व्याप्तं व्यतीतद्विषा ।
येनानुग्रहबुद्धिना भगवता सर्वो जनश्चिन्तितो
धौरेयं ह्युपकारधूर्धृतिकृते ध्यायेम तं स्वामिनम् ॥१॥

क्षोभो न लोभो न न कामकेलि-
र्न दोषपोषो न च रोषतोषौ ।
अमी स्फुटा यस्य भवन्ति भावा
उपास्महे तं परमं पुमांसम् ॥२॥

निर्द्वन्द्वेन शुभेन येन विभुना विश्वं सनाथीकृतं
[1]यस्याप्नोदितमप्यलक्ष्यचरितं दुर्लक्ष्यमर्वाग्दृशाम् ।
वाचोयुक्तिभिरप्यवाच्यवचनो यो यो न योगीन्दुभि-
र्गम्यो रम्यगुणाय नित्यपरमानन्दाय तस्मै नमः ॥३॥

---

१. अस्या० मु. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सांसारीभिरविद्याभिराक्रान्तो यो न जातुचित् ।
रात्नाकरीभिरूर्मीभिरन्तरीप इव स्फुटः ॥४॥
संसारतमसः पारे पारातीतस्य यो विभुः ।
अपारस्यापि पयसः पारे पाथोरुहं न किम् ॥५॥
अप्यप्रिये प्रियगिरः प्रियकारकस्य
धाता ससर्ज रसनां च मनश्च यस्य ।
द्रव्येण गुल्यमृदुना विगलन्मलेन
तस्मै नमो हृदयरञ्जनसज्जनाय ॥६॥
व्यक्तीभवेत्सुजनलोकगुणोऽस्फुटोऽपि
यस्यातिभीमविपरीतचरित्रदृष्ट्या ।
पथ्या फलान्मधुरिमेव गुणो जलस्य
सत्कार्य एव स खलः सुजनोपकारी ॥७॥
देशः पेशललक्ष्मीकः क्लेशलेशविवर्जितः ।
श्रीषुरासाण इत्याख्यः प्रख्यातो विषयान्तरे ॥८॥
परिपाकगलद्वृन्तैः खर्जूरीफलसञ्चयैः ।
सन्ति दुस्सञ्चरा यत्र नगरोषान्तभूमयः ॥९॥
दुर्बलश्रुतयस्तुङ्गस्कन्धा रोषान्धचेतसः ।
वक्रानना वाजिनः स्युर्न राजानः कदाचन ॥१०॥
उच्चैःश्रवस्सजातीया अनुच्चैःश्रवसो हयाः ।
साधीयःसाधनं यत्र राज्ञामेकं जयश्रिये ॥११॥
अक्षोडमुख्यखाद्यानि धान्यानीव पदे पदे ।
अटन्ति यत्र किं तत्र वर्णयामो महोर्वराम्[1] ॥१२॥

१. "सर्वशस्या भूर्महोर्वरा" कां.हं. प्रत्योः टि. । "सर्वशस्या भूः" इति मां. टि. ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनाविलं क्याबिलमस्ति नाम्ना
पुरं पुराणां धुरि वर्णनीयम् ।
उच्चैस्तनी यत्र चकास्ति भित्ति-
वप्रेऽवरोधे[1] वनितातातिश्च ॥१३॥

अदृष्टसूर्याः सदने यवन्यः
सदापि संसेवितसज्जवन्यः ।
सीमावनीषु प्रघनाश्च वन्य-
श्छायासमाच्छादितभूर्यवन्यः ॥१४॥

सुसेविताः स्वामिजना इव ध्रुवं
फलन्ति काले किल यत्र पादपाः ।
काले घनो वर्षति चाऽचिरप्रभा[2]
काले च काले घनगर्जितान्यपि ॥१५॥

यदीयशास्तारमशीतशासनं
संलक्ष्य लक्ष्मीरकुतोभया सती ।
समग्रदिग्मण्डलतः समीयुषी
चकार यत्र स्थिरमेकमाश्रयम् ॥१६॥

स्नेहक्षयो यत्र विभातदीपे
तथोदयोऽस्तंसहितो[3]ऽभ्रदीपे ।
सापच्च संपद्रजनीप्रदीपे
[4]जनेन दृष्टः प्रहतप्रदीपे ॥१७॥

अस्ति त्रस्तसमस्तारिस्तत्र शास्ता प्रशस्तहृत् ।
अकर्बुरं यशो बिभ्रद्धर्बरो मुद्गलाधिपः ॥१८॥

१. "अन्तःपुरे" कां.हं.मां. टि० ॥ २. "विद्युत्" कां.हं.मां. टि० ॥ ३. ०ऽस्तं सहितो मु. ॥
४. जने न मु. ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दग्धवैरिदलिकः किल तेजो-
राशिरस्य वडवानल एव ।
दीपनाय रिपुभूपपुरन्ध्री-
लोचनाश्रुनिवहोऽजनि यस्य ॥१९॥
अधिज्यके धन्वनि तस्य विद्विषा-
मधःकृता भ्रूकुटिरुत्कटापि हि ।
तस्मिन् शरौघं लघु संदधत्यहो
तुत्रोट तेषां रणगर्वग्रन्थिका ॥२०॥
नामतस्समजनिष्ट हमाऊ
तत्सुतो नरमणिः स च यस्मिन् ।
रत्नकुक्षिविधृते शुशुभेऽम्बा
शुक्तिकेव धृतमौक्तिकरत्ना ॥२१॥
स क्रमेण ववृधे सुतरत्नं
तेजसा च[1] वयसा च गुणैश्च ।
ग्रीष्मभानुरिव भीष्मगुणाढ्यो
दुस्सहोऽसहनसंहतिकानाम् ॥२२॥
अन्योऽन्यमात्सर्यवशादिवैताः
संचक्रमुस्तत्र कलाः समग्राः ।
जायेत लभ्ये सुभगे हि कान्ते
मृगीदृशामाशयबन्धसाम्यम् ॥२३॥
अदृष्टलक्ष्यव्यधतत्परं स्मरं
कलागुरूकृत्य धनुःकलाधरः ।

१. तेजसाऽथ कां. ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धनुष्मतां पङ्क्तिषु मुख्यतां गतः
स शब्दवेधी न कथं कुमारराट् ॥२४॥
तस्मिन् राज्यं निहितवान् हितवान् भूतलेऽखिले ।
योग्योऽसाविति जनको जानकीजानिसन्निभे ॥२५॥
चोलीबेगम इत्याख्या भाजनं प्रेमसम्पदाम् ।
राज्ञी राज्ञोऽभवत्तस्य लक्ष्मीर्लक्ष्मीपतेरिव ॥२६॥
सत्यप्यन्तःपुरे प्राज्ये साऽभूत्प्रेम्णेऽस्य भूरिणे ।
सतीषु सर्वतारासु रोहिणीव हिमद्युतेः ॥२७॥
यस्यां[1] असूर्यंपश्याया अपि चित्रकरो हृदि ।
पतिव्रताधर्मजुषो वर्ण्यते पद्मिनीगुणः ॥२८॥
जिग्ये यद्वदनश्रिया कुमुदिनीप्राणप्रियश्चक्षुषोः
संपत्त्या हरिणश्च विश्वनयनप्रेमोपदा प्रह्वया ।
स्थित्वैकत्र तयोर्जयाय तनुतस्तन्मन्त्रमेतावुभौ
नो चेदम्बरचारि-भूमिचरयोरेकत्र वासः कुतः ॥२९॥
माणिक्यमुक्तामणिहेमजात-
विभूषणश्रेणिमसौ शरीरे ।
बिभर्ति यां प्रत्युतकायकान्ति -
व्रातैरमुष्याः परिदीप्यते सा ॥३०॥
भुञ्जानयोः सह तयोः क्षितिपाललक्ष्मीं
कालः कियानतिजगाम निकामरामः ।
नैशः क्षणो[2] गगनमण्डलभोगभाजोः
संपूर्णचन्द्रवरचन्द्रिकयोरिवाशु ॥३१॥

१. अस्या मु. ॥ २. नैशक्षणो कां. हं. मु. ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्वातिशायिमंहसा सवितुः सगर्भं
गर्भं बभार मणिभूरिव राजरत्नम् ।
सुस्वप्नसूचिततमाभ्युदयप्रकर्षं
हर्षं सृजन्तममलस्य कुलस्य राज्ञी ॥३२॥
स्वं पश्यति स्म कमलाविधृतातपत्र-
मुत्सङ्गसङ्गतमधान्मृगराजबालम् ।
बिम्बं पपौ च परिपूर्णमनुष्णरश्मेः
पुत्रावतारसमये क्षितिपालपत्नी ॥३३॥
नन्दनोर्व्यामिवाङ्कुरः[2] कल्पद्रोः कामितप्रदः ।
गर्भः प्रववृधेऽमुष्याः सुमुख्या मुख्यभूपतेः ॥३४॥
गर्भानुभावात्सुभगः शुभाया
यो दोहदोऽस्याः प्रकटीबभूव ।
अपूरयद्भूपतिचक्रवर्त्ती
क्षणेन तं पुण्यवदग्रवर्त्ती ॥३५॥
प्रातर्नापितकान्तया कृतपुरस्कारं शुचिं दर्पणं
मुक्त्वा कामयते स्म तेजितमसिं दुर्दर्शमुत्पिञ्जलैः ।
रूपालोकनहेतवे ग्रहणजं क्लेशं च चन्द्रार्कयोः
नापश्यत्परदुःखकातरमना गर्भानुभावोदयात् ॥३६॥
अङ्के केसरिणं विशङ्कमनसा साऽखेलयत्सुन्दरी
मत्तं सिन्धुरमारुरोह विसृणिश्चेटीनिषिद्धापि च ।
चित्रन्यस्तममंस्त चित्रकमपि प्रायो हयं शूकलं
साध्वी साधुमिवातिवाहितवती तैस्तैर्विशिष्टैर्गतैः ॥३७॥

१. °महिमा कां. हं. मु. ॥ २. °कुरः कां.हं. मु. ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कस्तूरी मृगमृत्युमात्रसुलभा न ह्यङ्गरागे प्रिया
मुक्ताः शुक्तिविभङ्गजा नहि मतास्तस्या[1] विभूषाविधौ ।
कौशेयं किल नैच्छदच्छहृदया नेपथ्यमातन्वती
माता कुक्षिगते सुते बहुकृपासिन्धौ सबन्धौ हरेः ॥३८॥
दानाय मेरुं चकमे महामना-
स्तथा च ताराचलरोहणाचलौ ।
सपादभारप्रमितार्जुनप्रदं
पुनः पुनः कर्णनृपं निनिन्द सा ॥३९॥
नोज्झाश्चकार दाक्षिण्यमपि विप्रियकारिणि ।
नासभ्यमब्रवीत्सभ्या दास्याः परुषभाषणे ॥४०॥
दिनेषु पूर्णेष्वथ हृष्टबन्धु-
ष्वाकारसन्दोहमुदारमूर्त्तिम् ।
बिम्बं हिमांशोरिव पूर्णमासी
प्रासूत सा सूनुमनूनभाग्यम् ॥४१॥
भूषोत्कर्षा अकार्षुः पणहरिणदृशस्ताण्डवाडम्बराणि
व्यक्तानन्दा अमन्दं कुलकमलदृशः प्रोचिरे मङ्गलानि ।
साशीर्वादं प्रणेदुः पटुतरपटहाश्चत्वरे चत्वरेऽसौ
चक्रे भूचक्रशक्रः सुमहमिति तनूजन्मनो जन्मनोऽस्य ॥४२॥
शुभेऽहनि स्थामवतां ग्रहाणां
बलैर्बलिष्ठः प्रकटप्रभावः ।
मातापितृभ्यामयमीरितोऽभूत्
श्रीसाहिजातोऽकबरेति नाम्ना ॥४३॥

१. मनस्तस्या मुं.कां.हं. ॥ २. चैच्छ० मां. ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अः सर्वनाथः क इतीव[1] चात्मा
वरः प्रधानः स इवास्ति तेषु ।
तादृक्प्रभुत्वादिभिरित्युदर्थां
विज्ञो जगादाकबरेति संज्ञाम् ॥४४॥
पित्रोः प्रमोदेन समेधमानः
प्रभूतभूपालकुलप्रसूतैः ।
पोतैस्स रेमे रमणीयमूर्त्ति-
र्ग्रहैर्द्वितीयेन्दुरिवानुयातः ॥४५॥
कांश्चित्कुमारांस्तुरगान् प्रकुर्वन्
कांश्चिद्रथान् कांश्चिदिभान् प्रगल्भः ।
कांश्चित्प्रजाः कांश्चिदमात्यमुख्यां-
श्चिकीड स क्रीडनसूचितश्रीः ॥४६॥
प्रज्ञालचूडामणितां दधानः
क्रमादसौ भूमिभुजस्तनूजः ।
पक्षेऽवलक्षे कृशतामिवेन्दु-
र्मुमोच बालत्वमबाललीलः ॥४७॥
कलयामास सकलाः [2]सकलाः स कलागुरुः ।
यथालोककलोकानामादर्शः प्रतिमाततीः ॥४८॥
हयाशये कौशलमस्य पेशलं
किं वर्णयामो यदनेन चालितः ।
मन्दोऽपि वाजी गतितोऽनिलायते
परेरितो यः खलु मृन्म(ण्म)यायते ॥४९॥

---

१. इती च मु. शुद्धिपत्रे । "इतीव" इति स्यात् (?) ॥
२. "स कलाः नु कलागुरुः इति स्यात् पाठः ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उद्दामद्विरदद्विदन्तमुशली तस्यारुरुक्षोः सतो
निःश्रेणी प्रतिभाति चेतसि महावीरेषु चूडामणेः ।
तद्गर्वान्धलतानिराकृतिकृतेऽमुष्यार्द्धचन्द्राकृतिः
पाणिः साणिसृणिः स्मराङ्कुशमहा[1]धारान्धका(रा) हरेः (?) ॥५०॥

केशैः केसरिणं विलग्य शशवद्वध्नाति दोष्मा[2]नसौ
धत्ते चित्रकरं चरित्रमरिघो ग्राह्ये पुनश्चित्रके ।
न क्षोभं भजते तरक्षुतरसा सिंहाः पशूनाममी
पुंसिंहेन समं समत्वकथयापि स्युर्वराको यतः ॥५१॥

यदा यदोष्णत्विषि शीतलत्विषौ
धनुष्[3]कलामर्जुनगर्ज[4]तर्जनीम् ।
नन्वेतदीयां स्मरतस्तदा तदा
स्वमादरादावृणुतोऽभ्रवर्मणा ॥५२॥

रणाङ्गणे कोशबिलाद्विनिर्गतः
श्रितस्तदीयं करचन्दनद्रुमम् ।
पतत्कृपाणः फणभृत्पिबत्यहो !
द्विषन्नृपप्राणसमीरवीचिकाः[5] ॥५३॥

स्वर्गयात्रोन्मुखे ताते राज्यमेषोऽथ शिश्रिये ।
प्रभातचन्द्रे विरते यथा भानुर्नभस्तलम् ॥५४॥

---

१. मां. प्रतौ पार्श्वभागे "०रांधका हरेः" इति लिखितं कां. हं. मु. प्रतिषु "स्मराङ्कुशमहाधाक०" इति त्रुटित एव पाठः ॥

२. दोष्णा० मु. । ३. धनुःकला० कां. हं. मां. ॥

४. ०गर्जनिर्जनीम् कां. हं. मु. ॥

५. ०वीचिकां हं. । ०वीचिका मु. ।

राज्यश्रीर्यौवनश्रीश्च सममेनं श्रिते उभे ।
सौभाग्यभाजनं कान्तं न का कामयतेऽङ्गना ॥५५॥
ददाति धातुः किल साधुवादं
धम्मिल्लबन्धोऽस्य शुभाननस्य ।
सम्यक्कृता सृष्टिरियं यदिन्दु-
माप्तोऽपि राहुर्न विभुर्ग्रहीतुम् ॥५६॥
साम्राज्यभागयमहो ! भवितेति वर्ण-
पङ्क्तिर्विधातुरिह वार्द्धकदोषवक्रा[1] ।
सत्पञ्चमीन्दुकुटिलभ्रु निरीक्ष्य भाल-
मस्येति चिन्तयति चेतसि चारुबुद्धिः ॥५७॥
कर्णायतस्मितविलोचनकैतवेन
विश्रान्तमस्ति मृगबालयुगं सलीलम् ।
नित्योदयः सकलता च सदा मुखेऽस्य
तेनैत[2]दक्षतविधोर्न विशिष्यते किम् ॥५८॥
न्यायौचितीकरणतो रसनास्य साधून्
संजीवयत्यखिलदुष्टभुजङ्गदष्टान् ।
न्यायेन पूर्वगदितेन नवीनराहो-
रग्रासगोचरसुधारसपुष्टधारा ॥५९॥
इक्षोर्भिक्षोः कुले कोऽपि न कश्चिदतिशृङ्गभाक् ।
एतद्वचनमाधुर्य[3]कोट्यंशमपि यो वहेत् ॥६०॥
पीयूषकुण्डमिदमीयमुखं विभाति
शुद्धा सुधा बुधजनश्रवणप्रिया गीः ।

१. ०वक्ता कां. मु. । २. "मुखं" टि. कां. ॥ ३. ०माधुर्यं हं. ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केशोच्चयो यदधितिष्ठति नागराजो
जात्वेष मण्डलधरः किल जानुदीर्घः ॥६१॥
कल्पद्रुशाखाद्वयमस्य दीर्घं
करद्वयं चेतसि निश्चिनोमि ।
तच्छायमास्थाय नृणां स्थितानां
कुतोऽन्यथाऽ[1]नेन करोपतापः ॥६२॥
ककुद्मतः स्कन्धसपत्नभूतं
स्कन्धद्वयं बन्धुरमस्य जज्ञे ।
यतोऽतिभूयानपि सूद्वहः[2] स्या-
च्चतुर्दिगन्तावधिभूमिभारः ॥६३॥
वक्षः कपाटविपुलं सुदृढं यदस्य
नोत्तानतां तदधिगच्छति गूढमन्त्रम्[3] ।
अन्तर्द्रुतं विशति वीक्षितमात्रमेव
दुःखं परस्य बहुशो ननु कोऽत्र हेतुः ॥६४॥
शोभाभिभूतकमलौ सरलाङ्गुलीकौ
छत्रध्वजादिशुभलक्षणलक्षणीयौ ।
भातः क्रमौ भृशममुष्य मनुष्यनेतुः
सेवार्थिनां सततकामितकल्पवृक्षौ ॥६५॥
अप्यन्यदङ्गं क्षितिपस्य यद्यत्
सभासदां लोचनगोचरीस्यात् ।
सौभाग्यभङ्ग्या भुवनातिशायि
तत्सर्वमासेचनकं बभूव ॥६६॥

---

१. ०ऽन्यथा तेन हं. ॥ २. तद्वहः मु. ॥ ३. ०मन्त्रः मां ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुभवन्नपि राज्यमयं पितु-
र्यदधिकं चकमे विजयं दिशाम् ।
नहि निबन्धनमत्र सलोभता
यदतिजातसुतो यशसे पिता ॥६७॥

राजानमाजानुभुजं निशम्य तं
प्रतीपभूपा अधिकं चकम्पिरे ।
तदाश्रिता श्रीरपि चञ्चलाभवद्
यद्धारकं धार्यमनु प्रधावति ॥६८॥

दिग्यात्रायै प्रतस्थेऽथ वृद्धाभिः कृतमङ्गलः ।
अङ्गचेष्टाभिरादिष्टविजयाभ्युदयो नृपः ॥६९॥

नीराजनावह्निरपि प्रदक्षिण-
श्चक्रे पटुः[1] पट्टहयोऽपि हेषितम् ।
जगर्ज राजेन्द्रगजो मदोर्ज्जितं
तदा निमित्तैः शुभदैरुपस्थितम् ॥७०॥

पवित्रैश्छत्रौघैश्चमरसचिवैः शंसितशुभैः
स्वनद्भिर्निश्वानैर्विजयकथनैर्बन्दिभिरिव[2] ।
विहङ्गैश्चाषाद्यैः स्वरगतिविशेषैश्चलितवान्
दिशं पूर्वां पूर्वापतिसदृशलक्ष्मीमधिगतः ॥७१॥

नृपांश्छिन्दन् भिन्दन् विषमतरदुर्गानदरितो
नयन्नम्रानुच्चैःपदमसहदण्डानपनयन् ।

---

१. पटु कां. हं. मु. ॥ २. ०कथना ब० कां. हं. मां. ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपग्राह्यं गृह्णन् जनपदजनैरग्रनिहितं
[1]हमाऊवंशेन्दुर्जयति नृपतिः श्रीअकबरः ॥७२॥
उत्खाते प्रचलत्तुरङ्गमखुरैर्दानाम्बुभिर्दन्तिनां
संसिक्ते क्षितिमण्डले परिवपन् बीजं स्वतेजोमयम् ।
गृह्णन् वीरयशःफलानि विमलान्येष प्रतापार्यमा
पौरस्त्यान् विषयान् जगाम जगतीनाथः
समुद्रावधीन् ॥७३॥
पूर्वं विमत्य गर्वान्धान् संमन्यानुनतान्नृपान् ।
प्रतिवादी पुनर्वादी बुद्धिमानिव भूपतिः ॥७४॥
तत्प्राभृतं सुन्दरमाददानः
स्वयंवरां तद्विजयश्रियं च ।
स्वीकृत्य कृत्यप्रवणश्चचाल
वाचि स्थिरो भूपतिरन्वपाचि[2] ॥७५॥
सृष्ट्या भ्रमन्मङ्गलदीपकोऽपि
शुभाय शस्तः किमुतावनीपः ।
प्रजास्ववस्कन्दमतोऽयमीशो
विचिन्तयामास न जातु चित्ते ॥७६॥
छायाभिराश्वासितवाजिकुञ्जरा
फलैश्च सन्तर्पितवाहिनीजना ।
[3]कृतोपकारा शयनेषु पल्लवै-
स्तापीतटीयास्य वनी पटीयसी ॥७७॥

---

१. हुमाऊ० मु. ॥ २. ०रन्वयाचि कां. हं. मु. ॥ ३. तत्त्वोपकारा हं. ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काबेर्युपान्तक्षितिरूढरम्भा
एतद्बलस्य व्यजनार्थदासी ।
मार्गश्रमस्वेदविनोदनार्थं
दलावलीभिः कृततालवृन्ता ॥७८॥
दाक्षिणात्येषु देशेषु विहरन्नथ लीलया ।
मलयाद्रिमनायासं जयस्तम्भं चकार सः ॥७९॥
नम्रेषु तत्र भूपेषु सार्वं कोषमवाप्य च ।
करवालेन राजेन्द्रः परप्रान्तं[1]मियेष सः ॥८०॥
गलद्गभस्तिर्गतवान् प्रतीचीं
प्रतीतमेतद्रविरस्तमेति ।
अयं तु तेजो द्विगुणं बभार
सुदुस्सहं चासहनैर्महीशैः ॥८१॥
दुःखार्दिताभिरपरान्तनृपाङ्गनाभि-
र्दीर्घं यदेव हृदि निःश्वसितं तदेव ।
तत्रास्य शौर्यदहनस्य करालकान्तेः
सन्धुक्षणाय पवनोदय आदिमोऽभूत् ॥८२॥
प्रत्यग्महीशैर्महिमाविहीनैर्दीनैर्भ्रकुंसैरिव वेषधारैः ।
नरेन्द्रराजः शरणं प्रपेदे प्रणामसंन्यस्तविकोपचिन्हः ॥८३॥
कुबेरवासां दिशमन्वियाय
[2] कुबेरवद् द्रव्यपतिः प्रभूय ।
तुदन्नुदीचीननरेन्द्रगर्वं
सर्वंकषात्युग्रमहा महीशः ॥८४॥

---

१. परप्रात० कां. मां. ॥ २. नुद० हं. ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तं देशमादेशहठी विधिज्ञो
विलोड्य मन्था इव दध्यमत्रम् ।
जग्राह सर्वस्वमसौ यशस्वी
निवेशनीयो धुरि दोर्धनिषु ॥८५॥
पताकिनीं शैलपतेरुपत्यका-
मावासयामास[1] धरासु वासवः ।
दवाग्निदग्धागुरुधूपधूमजै-
र्गन्धैरभिव्याप्तसमीपभूमिकाम् ॥८६॥
ततोऽयमस्माच्चमराणि चारू-
ण्यादाय चिह्नं चतुरंगलक्ष्म्याः[2] ।
संजातसिद्धिः प्रयियासति स्म
श्रीमाननुश्रीकरि राजसिंहः ॥८७॥
समुद्रवेलाभिरिवोद्धताभि-
श्चमूभिराक्रान्तदिगन्तदेशः ।
चचाल भूपालवरोऽथ कुर्वन्
शेषोरगासोढभरां धरित्रीम् ॥८८॥
मया पुरेऽस्मिन्वसता समस्तं
भूमण्डलं दोर्युगसादकारि ।
इति स्वभाषामयशब्ददत्त-
फतेपुराख्यं नगरं विवेश ॥८९॥
अनेन सेनोत्थरजोनिवेशितं
भूमि(मी)भुजां छत्रवियुक्तमौलिषु[3] ।
विनीय नीचैःपदमीश्वरेण य-
द्गुरूकृतः को न समेति गौरवम् ॥९०॥

१. मवास० हं ॥ २. ०लक्ष्मा मु ॥ ३. ०वियुक्तमौलि हं. ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अस्मिन् प्रविष्टे पुरमुत्पताकिकं
दिक्कुक्षिपूरी जयतूरनिस्वनः ।
अस्फोटयद्व्योम ततोऽनुवेधसा
क्षिप्ता इव स्फूर्तिगुणा उडुच्छलात् ॥९१॥
संपूर्णरूपा नरराजपुत्रीः
पूर्णां भुवं चाथ नृपोपनीताः ।
पाणौ चकार स्त्रियमङ्गहीनां
कः स्वीकरोति स्वयमङ्गपूर्णः ॥९२॥
सिंहासनासीनमिमं ननाम
सचामरं मौलिधृतातपत्रम् ।
प्रसाददानोन्मुखलोचनाभ्यां
विलोकमानं क्षितिपालवर्गः ॥९३॥
खानखानादयः खाना ऊर्ध्वदीक्षाव्रतं ललुः ।
एतस्य पुरतो राज्ञः शिष्या इव गुरोः पुरः ॥९४॥
दूरादुपागतमहीभृदुपायनानि
दृष्ट्वैव पावनदृशाऽकबरो नरेन्दुः ।
भ्रूसंज्ञयैव वितितार समीपगेभ्यो
मन्दारपादप इवार्थिषु दानशौण्डः ॥९५॥
नयवतां धुरि संस्थितिमादधे
नृपतिरेष तमुग्रकरे त्यजन् ।
ऋणवतीं क्षितिमाह यदग्रहे
परनृपः परवित्तकृतस्पृहः ॥९६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अलुब्धबुद्धिर्धरणीधवोऽसौ
न स्वप्नवृत्तावपि दण्डमाधात् ।
सानुग्रहो निग्रहणीयदुष्टान्
विवर्ज्य बन्धुष्विव नागरेषु ॥९७॥
मृतस्वमोक्ता तु कुमारपालः
शुल्कस्वमोक्ता तु फतेपुरेशः ।
पुरा गवां बन्दिमपाचकार
धनञ्जयः साम्प्रतमेष एव ॥९८॥
स्वं शुल्कस्य विमुञ्चतोऽस्य दिवमारोहद्यशः पावनं
दत्त्वा विक्रमकर्णभोजधरणीभाजां पदं मौलिषु ।
एकैकस्य दिनस्य पिण्डितधनं सार्वक्षितीयं यत-
स्तद्दानद्रविणाधिकं नहि निजे चेतःसमुद्रे धृतम् ॥९९॥
शुल्कं तावदनेन कल्पतरुणा सन्तोषिणा मुञ्चता
हिन्दूभ्यः सकलेभ्य एव नियतं स्वात्मातिशायी कृतः ।
साहीनां शिरसि व्रजामि किमहं चूडामणीतामिति
प्राज्ञो धेनुषु जीवितानि वितरत्येकान्तमुद्यत्कृपः ॥१००॥
प्रातर्बन्धनदामनीधुतगला उत्कर्णकास्तर्णकाः
सानन्दोल्ललनोद्यताः स्तनपयःकेलिं वितन्वन्ति यत् ।
यच्चाम्बा विलिहन्ति तान् रसनया प्रेमप्रकर्षार्द्रया
दृष्ट्[1]या तत्करुणैकभावलसितं श्रीश्रीहमाऊभुवः ॥१०१॥
अपहरति महो यो मण्डलस्थग्रहाणां
रविरपि स ग[2]लब्धा वारुणीसंगरागात् ।

---

१. दिष्टया मु. ॥ २. कल० हं. ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किमिह परमनुष्यः कर्मणा[1] यो भुजिष्यः
क्षितिपतिरिति मद्यं सर्वनिन्द्यं न्यषेधत् ॥१०२॥
शस्त्रं न शस्त्री दधते मदग्रतो
भवेदिमाभिः प्रकटासिधारकः ।
कामः पराभूतप्रभूतभूतिमा-
नपाचकारेति पणाङ्गना असौ ॥१०३॥
अस्य क्षितीन्दोरनुशासनं नवं
चो(चौ)रे गुणाभावमुरीचकार यत् ।
चौर्यस्य वृद्धिः कुत एव संभवेत्
विहाय चो(चौ)रं खलु यन्न जायते ॥१०४॥
दशाननस्येव जगच्चरिष्णु-
यशस्समूहस्खलनोच्चभित्तिं[2] ।
पराङ्गनां कामयते न कोऽपि
कोपि[3] क्षणादीक्षणमस्य वीक्ष्य ॥१०५॥
जितो हि यो यत्र स तत्र सक्तो
भवेदिति न्याय्यमिहाजितोऽपि ।
उच्चैस्तदासक्तिभृदित्यवद्य-
द्यूतं स्वदेशे व्यसनं न्यषेधत् ॥१०६॥
सर्वप्रभुः संप्रति मद्द्वितीयो
जगन्त्यधीष्टे सचराचराणि ।
सानुग्रहोऽसौ सकलेषु भूते-
ष्वनेन तस्मान्मुमुचे मृगव्यम् ॥१०७॥

१. कर्मणां कां. हं. मु. ॥ २. °भित्तिः मां. ॥ ३. कोपशीलम् ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शस्त्रग्रहेण[1] धुरि लब्धसमन्तुताके
शस्त्रं विमोच्यमिति वीरजनप्रतिज्ञा ।
जन्तूनमन्तुदरितान्[2] किमहं निहन्मि
वीरावतंस इति धीरनुकम्पतेऽसौ ॥१०८॥
अन्यैर्नृपैर्यः खलु साधुवाक्य-
प्रवेशविघ्नाय निजश्रवस्सु ।
दौवारिकत्वं प्रतिलम्भितः स
निर्वासनीयोऽजनि दुर्जनोऽस्य ॥१०९॥
त्वं जीव ! नंद ! विजयस्व ! चिरं जय ! त्व-
मित्याशिषं ददति डाबरपालिसंस्थाः ।
मत्स्या नृपाय विभया जलकेलिकामो
यद्येति तद्धरमसाविति निर्निमेषाः ॥११०॥
क्रूरा बका अकबरस्य महामहीन्दोः
पुण्याय चञ्चुपुटकेन तिमीन् गृहीत्वा ।
आश्चर्यपूर्णहृदया अनुकम्पमाना-
स्तन्मात्रभक्षणकृतोऽपि सकृत्त्यजन्ति ॥१११॥
चोलीबेगमनन्दने क्षितिपतौ नानीतयो नेतयो
दुर्भिक्षं न न विड्वरं न मरकं काले घनो वर्षति ।
काले वृक्षफलोद्गमः सरसता बाहुल्यमिक्षोर्वने
धातूनां बहुतां[3] करेषु महिमा नेतुस्तु दृष्टेरहो ! ॥११२॥
कन्ये ! कासि ? कृपा, कुतोऽसि विधुरा ?, राजा कुमारो गत,-
स्तत्किं ?, हिंसकमानवैरहरहर्गाढं प्रमुष्टास्म्यहम् ।

१. शास्त्र० हं. ॥ २. ०दुरितान् हं. ॥ ३. बहुताकरेषु मु. ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थानाय स्पृहयामि, तद्भज शुभे ! भूभामिनीभोगिनं
संप्रत्येकनृपं चिरादकबरं येनासि न व्याकुला ॥११३॥
ध्रुवं द्विषामेव चकोरचक्षुषां
निःश्वासवातेन तनीयसेरितः ।
कृपापरत्वेन सुखीकृताङ्गिनः
प्रतापदीपस्तव दीर्घसंस्थितिः[1] ॥११४॥
उद्वासितद्वेषिपुरोद्गतेषु
सुप्रापभावं कुरुषे तृणेषु ।
त्वत्स्पर्द्धयेव त्वदरातिभिस्तु
दुरापता दन्तधृतैः कृता तैः ॥११५॥
अस्मिन् भिल्लातकरसमभिज्ञानमादौ व्यधास्य-
न्नो चेद्रोहिण्युदितधिषणा तर्हि कस्मादवाप्स्यत् ।
चन्द्रं कान्तं विशदयशसा श्रीहमाऊसुतस्य
श्वेतीभावं जगति गतवत्येकराज्याधिभर्त्तुः ॥११६॥
जगद्गुरूभूय जगत्त्रयीपति-
र्भवांश्च हिंसादि निराकरोत्यलम् ।
जनेषु भीस्तत्र तवैव भूयसी
यस्मादनाज्ञाफलसन्निकृष्टता ॥११७॥
आदेश्यमात्मीयमिहैव सर्वं
नियोज्य जातश्चरितार्थ ईशः ।
प्रवर्त्तयन् साधुवदेष[2] भूपः
परां धुरामुद्धहतीशभक्तेः[3] ॥११८॥

१. °संस्थितः मु. ॥ २. °वदेव कां.हं. मु. ॥ ३. °भक्ते कां. हं. मु. ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शेषूजी-पाहडी-श्रीमद्दानिआरा भवन्त्वमी ।
आयुष्मन्तः साहिजाता मूर्तिभेदा इवेशितुः ॥११९॥
त्रिष्वपि प्रकृतिबन्धुरबन्धु-
ष्वग्रजोऽस्य नृपतेः पदयोग्यः ।
चन्द्र-दीप-दिनपत्रिकमध्ये
भानुरेव भुवनेऽधिकतेजाः ॥१२०॥
भूयस्तरां परिचितेर्विदितस्वभावः
स्वामी नृणामयमयाचि मया कृपार्थम् ।
श्रीवाचकेन्द्रसकलेन्दुगुरुप्रसादा-
दुत्पन्नबुद्धिविभवाद्धृतधाष्ट्र्यकेन ॥१२१॥
यान् सांप्रतं भरतसाधुषु लब्धसीमान्
दृष्ट्वा श्रुतान् श्रवणलोचनयोर्विवादम् ।
निन्ये स्वयं परिसमाप्तिमसौ महीशः
सत्सङ्गतावतितरां रसिकस्वभावः ॥१२२॥
श्रीयुक्तहीरविजयाभिधसूरिराजां
तेषां विशेषसुकृताय सहायभाजाम् ।
जन्तुष्वमारिमदिशद्यदयं दयार्द्र-
स्तत्पुण्यमानमधिगच्छति सर्ववेदी ॥१२३॥
जालच्युतस्तिमिगणस्तिमिभिर्मिमेल
पोतांश्चुचुम्ब खगवृन्दमपास्तपाशम् ।
[1]सूनोपनीतसुरभीकुलमो[2]र वेगाद्
यत्तद्विजृंभितममुष्य कृपालुमूर्त्तेः ॥१२४॥

---

१. स्तनो० कां. हं. । स्तन्यो० मु. ॥ २. "प्राप" टि. मां. ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवेषु जीवितसुखं ददता ह्यनेन
यत्पुण्यमर्जितमुदारमुदारभावात् ।
राजन्यलोकसहितः सह साहिजातै-
स्तेनायमभ्युदयवान् भवताच्चिराय ॥१२५॥
यज्जीजिआकरनिवारणमेष चक्रे
या चैत्यमुक्तिरपि दुर्दममुद्गलेभ्यः ।
यद्बन्दिबन्धनमपाकुरुते कृपार्द्रो[1]
यत्सत्करोत्यवमराजगणो यतीन्द्रान् ॥१२६॥
यज्जन्तुजातमभयं प्रतिमासषट्कं
यच्चाजनिष्ट विभयः सुरभीसमूहः ।
इत्यादिशासनसमुन्नतिकारणेषु
ग्रंथोऽयमेव भवति स्म परं निमित्तम् ॥१२७॥
मात्सर्यमुत्सार्य कृतज्ञलोकै-
र्ग्रन्थोऽनुकम्पारसकोशनामा ।
संशोधनीयः परिवाचनीयः
प्रवर्त्तनीयो हृदि धारणीयः ॥१२८॥

इति श्रीकृपारसकोशग्रंथः संपूर्णः ॥

पातसाहिश्री-अकबर-महाराजाधिराजप्रतिबोधकृते
महोपाध्यायश्रीशान्तिचन्द्रगणिविरचितः ॥

१. कृपाज्ञो मु. ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कृपारसकोशका संक्षिप्तसार।

(नोट : इस प्रबन्ध में लेखक ने फक्त काव्यदृष्टि से वर्णन किया है। कवि का कर्म केवल अकबर की प्रशंसा करने का था न कि जीवन-चरित्र लिखने का। इस से पढते समय पाठक इतिहास की ओर लक्ष्य न रक्खें।)

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

जिस परमात्माने अपने ज्ञान स्वरूप नेत्र से संपूर्ण जगत् को हस्तस्थित-आमलक की तरह देखा है, राग-द्वेष रहित जिस ज्ञानात्माने अखिल विश्व को ज्ञान द्वारा व्याप्त किया है और अनुग्रहबुद्धिवाले जिस भगवान्ने सब जनों के हित की चिन्ता की है, उपकार के भार को वहन करने में वृषभ के समान उस समर्थ स्वामी का हम ध्यान-चिन्तन करते हैं। जिस को न लोभ है, न क्षोभ है, और न काम-क्रीडा है; जो दोषों का पोषण भी नहीं करता और रुष्ट-तुष्ट भी नहीं होता; तथा संसार के सभी भाव जिस को स्फुट तया ज्ञात है उस परम पुरुष की हम उपासना करते हैं। सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों से रहित ऐसे जिस पवित्र प्रभुने इस जगत् को सनाथ-रक्षित किया है, आप्तपुरुषों के द्वारा कथित होने पर भी जिस का अलक्ष्य-चरित्र, स्थूल-दृष्टि वाले सामान्य जनों को दुर्लक्ष्य ही है, विविध प्रकार की वचन - भङ्गियों द्वारा भी जिस के वचनों का भाव कहना अशक्य है और महान् योगियों को भी जो अगम्य है उस सुन्दर गुण वाले तथा सर्वदा श्रेष्ठ-आनंदवाले परमात्मा को नमस्कार है। सामुद्रिक लहरों से जिस प्रकार उस का मध्यवर्ती द्वीप अनाच्छादित रहता है वैसे परमात्मा भी सांसारिक अविद्यायों से सदा अलिप्त है। यह परमेश्वर, अमर्यादित ऐसे संसार समुद्र के भी उस - अनिर्वचनीय- पार पर विराजित है। अथाह ऐसे सागर के भी कमल क्या ऊपर नहीं रहता ?

हृदय को रंजन करने वाले उस सज्जन को हमारा नमस्कार है जो अप्रिय-व्यक्ति के विषय में भी प्रिय-भाषण और प्रिय-कार्य करने वाला है। क्यों कि उस के मन और जीह्वा को ब्रह्माने किसी अच्छे मधुर और निर्मल द्रव्य से बनाया है। सज्जनों का उपकारी वह खल (दुर्जन) भी सत्कार करने योग्य है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिस के दुष्ट आचरण और विपरीत प्रदर्शन से, हरडे के कारण जैसे जल का मधुर गुण व्यक्त होता है वैसे, अस्पष्ट भी सुजनों के गुण प्रकट हो जाते हैं।

सुन्दर संपत्ति-शाली और सुख का स्थान तया जो जगत् में प्रसिद्ध है, पक पक कर झाड के शिरे से नीचे गिरी हुई खजूर के ढेरों से जहां के गाँवो के आस पास की जमीन चलने में भी कठिनता देने वाली है, जहां पर पतले कान, उंचे खंधे, वांके मुंह और रोषान्ध मन वाले केवल घोडे होते हैं- परंतु राजा नहीं, इन्द्र के उच्चैःश्रवा नामक घोडे के जैसे जहां के उत्तम जाति वाले, घोडे राजाओं को विजय-लक्ष्मी संपादन करने में एक अनुपम साधन हैं और धान्यों की तरह जहां पर जगह जगह अखोड आदि उत्तम प्रकार का मेवा उत्पन्न होता है वैसा एक रसाल जमीन वाला खुरासान नाम का सुन्दर देश है।

इस खुरासान देश में, अन्य नगरों में अग्रपद पाने योग्य काबुल नाम का नगर है, जिस की दिवारें बडी उंची उंची है। जहां की उच्चस्तनवाली स्त्रियें सदा पडदे में रहनी वाली होने से कभी सूर्य का दर्शन नहीं करती। नगर के समीप की विशाल भूमी बागीचों के वृक्षों की छाया से सदा ढंकी रहती है। जहां पर यथा समय ही मेघ वर्षता है, बिजली चमकती है और वृक्ष फलते हैं। प्रचंड-शासनधारी शासकों को देख कर जहां पर सब दिशाओं से आ आ कर लक्ष्मी ने निवास किया है। जहां पर, स्नेह (तैल) का नाश केवल दीप में, अस्त होने वाला उदय केवल सूर्य में और आपद्वाली संपद् केवल चंद्र में देखी जाती है, परंतु मनुष्यों में नहीं।

इस काबुल नगर में, मुगलों का स्वामी बाबर नामका बादशाह था जो प्रसन्न- हृदय वाला और समस्त शत्रुओं का संहार करने वाला था। वैरियों के दल को बालने वाला उस का तेजोराशि, शत्रुओं की स्त्रियों के लोचनों के अश्रु-प्रवाह को दहन करने के लिये वडवानल के समान था। उस के धनुष्य पर डोरी खींचते ही शत्रुओं की उत्कट भ्रकुटियें नीची हो गईं थी और उस पर बाण चढाते ही उन की लडने की हिंमत छूट गई थी। उस बाबर के एक हुमायु नाम का पुत्र हुआ जिस को गर्भ में धारण करते समय उस की माता, मुक्ताफल को धारण करनेवाली शुक्ति के समान, शोभती थी। क्रम से यह पुत्र रत्न तेज से, उग्र से और गुण से, ग्रीष्मकाल के सूर्य समान, शत्रुओं के लिये दुस्सह होने लगा। परस्पर मानों ईर्ष्या कर के ही सभी कलायें इस को प्राप्त हुईं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धनुष्य धारियों में यह सब से प्रथम पंक्ति में गिना जाने लगा। बाबर ने इस को सब प्रकार से योग्य जान अपना राज्यमुकुट इसे पहनाया। इस हुमायु नृप के चोली- बेगम नाम की, विष्णु को लक्ष्मी की तरह, प्रिय स्त्री थी। जिस तरह, अनेक ताराओं के रहने पर भी रोहिणी ही चंद्र को अधिक प्रिय होती है वैसे अनेक स्त्रियों में भी हुमायु को यही अधिक प्रेम पात्री पत्नी थी। मालूम होता है कि इस रानी के मुख और नेत्र से ही पराजित हो कर चंद्र और हरिण दोनों इकट्ठे हुए हैं और उन पर-रानी के मुख और नेत्र पर- विजय प्राप्त करने के लिये एकांत में कोई परामर्श चला रहे हैं। अन्यथा चंद्र जो गगनगामी है और हिरण जो भूचारी है, इन दोनों का एक स्थान पर संगम कैसे हों ? यह अपने शरीर पर जो गहने पहनती थी उन से इस के शरीर की शोभा नहीं बढती थी परन्तु इस के शरीर की कांति से उन आभूषणों की सुन्दरता बढती थी। अर्थात् रानी का सौन्दर्य ही भूषणों का आभूषण था। इस तरह राजा और रानी के राज्यलक्ष्मी भोगते हुए कुछ समय व्यतीत हुआ।

जैसे रत्न की खान श्रेष्ठ रत्नों को धारण करती है वैसे ही इस रानी ने एक समय सूर्य के समान तेजस्वी गर्भ को धारण किया। यह गर्भ अपने निर्मल कुल को हर्ष पैदा करने वाला हो कर सुन्दर स्वप्नों से भावी महान् अभ्युदय की सूचना करने वाला था। रानी ने, इस गर्भ के अनुभाव से अनेक उत्तम उत्तम स्वप्न देखे। अच्छे अच्छे दोहद भी उत्पन्न हुए जिन को बादशाह ने पूर्ण किये। गरीबू गुरबों कों बहुत सा उस ने दान दिया। अप्रिय करने वालों की तरफ भी उस ने अपना सद्भाव बताया तथा दासीजनों के कठोर भाषण करने पर भी कभी असभ्य शब्द नहीं निकाला। संपूर्ण दिन हो जाने पर, जिस तरह पूर्णिमा पूर्ण चंद्र को प्रकट करती है वैसे उस बेगम ने सर्वांग सुन्दर और पूर्ण भाग्यवान् पुत्र को जन्म दिया।

बादशाह हुमायु ने पुत्र का खूब जन्मोत्सव किया। जगह जगह पर वेश्याओं के नाच, कुल कामिनियों के गान और याचकों के शुभाशीर्वाद हुए। अच्छा शुभ दिन देख कर बादशाह ने अपने पुत्र का 'अकबर'+ ऐसा नाम

+ विद्वान् लोक 'अकबर' शब्द का यह अर्थ करते हैं कि:- 'अ' विष्णु, 'क' काम और आत्मा; इन तीनों में जो 'वर' श्रेष्ठ जैसा-अर्थात् विष्णु के जैसा समर्थ, काम के जैसा सौंदर्यवान् और आत्मा के जैसा निर्मल-वह अकबर।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थापन किया। माता पिता के हर्ष के साथ बढता हुआ यह अकबर बरोबरी के राजपुत्रों के साथ नाना प्रकार के खेल खेलने लगा और किसी को मंत्री, किसी को छडीदार, किसी को सेनापति तथा किन्हीं को प्रजा आदि बना कर उन में अपना प्रभुत्व की कल्पना करने लगा। बुद्धिमान् मनुष्यों को इस की इस क्रीडा में भावी महान् सम्राट्त्व का अनुमान हो जाता था। जिस प्रकार शुक्ल-पक्ष का चंद्रमा दिन प्रतिदिन कृशता का त्याग कर पूर्णता को प्राप्त करता जाता है वैसे यह अकबर भी अपने बाल- भाव को छोड कर प्रतिदिन प्रौढावस्था को धारण करने लगा। थोडे ही समय में इस ने सब कलाओं में निपुणता प्राप्त कर ली। घोडों को चलाने में यह बडा अद्वितीय निपुण था। जो घोडा दूसरों के चलाने पर मिट्टी का सा बना हुआ जान पडता था और पैर पैर पर रुक जाता था वही इस के चलाने पर पवन की तरह आकाश में उछलने लगता था। बडे बडे मदोन्मत्त हाथियों के लंबे लंबे दांत तो इस के चढने के लिये सीढियों का काम देते थे। इस की वज्र के जैसी मुट्ठी ही हाथियों के लिये तीक्ष्ण अंकुश रूप थी। यह केवल हाथ ही से केसरी- सिंह की सटा को पकड कर उसे, खरगोस की तरह, बांध लेता था। अर्जुन की तरह धनुष्य चलाने में भी यह बडा कुशल था। इस के हाथ में रहा हुआ खड्ग शत्रुओं का प्राणनाश करने में, काले साँप का अनुकरण करता था।

जैसे प्रातःकालिक चंद्र के अस्त होने पर नभोमंडल का स्वामी सूर्य बनता है वैसे हुमायु के परलोक वासी होने पर अकबर पृथ्वीमंडल का अधिपति बना। राज्यश्री और यौवनलक्ष्मी रूप दोनों स्त्रियें एक ही साथ अकबर के सम्मुख आ कर उपस्थित हुई- क्यों कि जो असाधारण सौन्दर्यवान् होता है उसे कौन स्त्री नहीं चाहती ? अकबर के मुंह की बराबरी चंद्र भी नहीं कर सकता है। क्यों कि वह तो सदोदित और संपूर्ण कलावान् नहीं रहता है और इस का मुंह तो नित्योदय और सकल कला सहित है। दुष्ट मनुष्य रूप सर्प से डसे जाने वाले मनुष्य को अकबर की जबान अमृत का काम देती है- अर्थात् यह अपने न्यायोचित आदेश द्वारा अन्यायी जनों को पूरी शिक्षा देता है। अकबर के वचन की मधुरता की समानता करनेवाली, सक्कर और साधु-वचन में भी मीठास नहीं है ? याने इस का मीठा वचन सक्कर और साधुवचन करते भी लोकों को अधिक मधुर लगता है। कवि कल्पना करता है कि - अकबर का जो मुँह है वह तो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अमृत कुण्ड है और उस का जो मिष्ट-वचन है वह अमृत रस है जिस की रक्षा, जानु तक लंबा ऐसा मस्तक पर का केश-समूह रूप काला साँप निरंतर कर रहा है (अमृत की रक्षा सर्प करता है, यह प्रसिद्ध बात है।) इस के दोनों हाथ कल्पवृक्ष के जैसे हैं; क्यों कि जैसे कल्पवृक्ष की नीचे बैठनेवाले मनुष्य को किसी प्रकार का संताप नहीं होता वैसे इस की भुजा- छाया के आश्रय में रहने वाले मनुष्य को भी किसी प्रकार का संताप नहीं होता है। कवि कहता है - इस अकबर का वक्षःस्थल न जाने किस चीज का बना हुआ है ? यह पता नहीं लगता। क्यों कि एक तरफ तो इस का हृदय इतना कठोर मालूम देता है कि जिस में की गूढ बात किसी प्रकार बहार निकल ही नहीं सकती। और दूसरी तरफ, दूसरे का दुःख देखते ही इस का अंतःकरण शीघ्र पिघल जाता है। छत्र, ध्वजादि शुभ लक्षणों वाले इस के सुंदर पैर अपनी शोभा से विकसित कमल को भी पराजित करते हैं। इस प्रकार इस के सभी अंग संपूर्ण सौन्दर्य वाले हो कर देखने वाले के मन को अपूर्व आनंद देते हैं।

अकबर अपने पिता का राज्य प्राप्त कर जगत् में विशेष विजय करने की इच्छा करने लगा। यह इच्छा लोभ के कारण नहीं परंतु पिता के यश की विश्व में ख्याति करने के उद्देश से उत्पन्न हुई थी। अच्छे मुहूर्त में इस ने दिग्विजय करने के लिये प्रयाण किया। प्रयाण करते समय सभी प्रकार के शुभ शकुन हुए। अकबर के विजयनिमित्त प्रयाण को सुन कर बहुत से राजे कम्पित हो ऊठे और उन की लक्ष्मी भी चंचल हो गई। यह नियम ही है कि आधेय पदार्थ आधार ही के पीछे गमन करते हैं। बादशाह ने, इन्द्र की सी शोभा को धारण कर, पहले पूर्व दिशा में प्रस्थान किया। नाना प्रकार के दुर्गम और अजेय दुर्गों को जीतता हुआ, अनेक राजाओं को वश करता हुआ, किसी का उच्छेद और किसी का भेद करता हुआ, जो अभिमानी था उस का मान उतार कर, नम्र हो जाने पर फिर उसे अपने राज्य पर स्थापित करता हुआ और उन उन देशवासियों द्वारा भेंट किये गये पदार्थों का स्वीकार करता हुआ; अकबर, ठेठ पूर्व दिशा के समुद्र पर्यंत के देशों तक चला गया।

वहां से बादशाह दक्षिण की और रवाना हुआ। इस तरफ के भी गर्विष्ठ नृपतियों को पहले अपमानित कर और फिर उन के नम्रता स्वीकार लेने पर पुनः सन्मानित किये। अपनी इस विजययात्रा में बादशाह ने प्रजा को जरा भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कष्ट न दिया। केवल शत्रुवर्ग ही को उस ने गतगर्व और वनवासी बनाया- औरों को नहीं। दक्षिण में जाता हुआ बादशाह तापी नदी के किनारे पर पहुंचा। उस ने, अपने तट पर लगे हुए विशाल वृक्षों की गहरी और शीतल छाया द्वारा हाथी, घोडे आदिकों को आश्वासन दे कर, सुंदर फलों द्वारा सैनिकों के मन संतुष्ट कर और नये नये कोलम पत्रों द्वारा सुखद शय्या का सुख दे कर, बादशाह का स्वागत किया। आगे जाने पर काबेरी नदी आई, जिसने भी अकबर के सैन्य का मार्गजन्य परिश्रम दूर करने के लिये, अपने किनारे पर खडे हुए उँचे उँचे झाडों की पत्रावलि द्वारा, हाथ में पंखा लिये हुए मानों दासी का रूप धारण कर, अकबर का आतिथ्य सत्कार किया। इस को पार कर, दक्षिण के विविध देशों में लीला पूर्वक विचरण करते हुए बादशाह ने विना ही श्रम से मलयाचल को अपना जयस्तंभ बनाया।

वहां के राजाओं के खजानों में से अगण्य धन प्राप्त कर बादशाह ने पश्चिम की और अपना सैन्य प्रवाह बहाया। पश्चिम दिशा में जाने से तो सूर्य का तेज भी क्षीण हो कर अंत में अस्त हो जाता है पर अकबर के विषय में इस से उलटी बात हुई। इस दिशा में जाने से शत्रुओं को दुःसह ऐसा इस बादशाह का तेज दुगुना प्रज्वलित हुआ। शत्रु नृपतियों की दुःखपीडित स्त्रियों के संतापपूर्ण हृदयों में से जो कष्ट भरे निःश्वास निकलते थे उन्हों ने अकबर के शौर्यरूप अग्नि को अधिक उदीप्त करने में प्रचंडपवन का काम दिया। बहुत से राजाओं ने अपना गर्व छोड कर, स्त्री वेषधारी नर्तक के समान, स्त्री के वेष को पहन कर और दीन हो कर राजाधिराज अकबर की, जो शत्रु को भी नम्र हो जाने पर पूर्ण शरत देता है, शरण ली।

इस प्रकार पश्चिम में विजयी हो कर, अनेक नृपतियों का पराभव करता हुआ और कुबेर के समान विपुल ऐश्वर्यवान् बन कर, कुबेर ही की दिशा जो उत्तर है उस की और बादशाह चला। पराक्रमियों में प्रधान और अपनी आज्ञा का पालन कराने में आग्रही ऐसे बादशाहने, जिस प्रकार दहीं का मंथन कर उस का सार-नवनीत- निकाल लिया जाता है वैसे, उत्तर देशों का दलन कर वहां का सर्वस्व अपने स्वाधीन किया। धरातल के इन्द्र समान इस नृपराजने, उत्तर में ठेठ हिमालय की उस तराई में जा कर अपने सैन्य को ठहराया जहां दावानल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से जले हुए अगुरु वृक्षों के धूप-धूम्रोंसे सारा मैदान सुगंधमय हो रहा था।

इस प्रकार पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर-चारों दिशाओं में विजय प्राप्त कर, अपनी इष्ट-सिद्धि की पूर्णाहूति हो जाने से, बादशाह अपनी राज्यधानी सिकरी की ओर रवाना हुआ। समुद्र के तरंगों के समान अपने सैन्य द्वारा सारे भूमंडल को व्याप्त करने वाले राजाधिराज अकबर शाहने सिकरी शहर में जब प्रवेश किया तब इस की समृद्धि का इतना बोजा पृथ्वी पर जमा हुआ कि जिसे शेषनाग भी उठाने में असमर्थ होने लगा। 'मैंने इस स्थान में रह कर समग्र पृथ्वीमंडल को फतह किया है - अपने स्वाधीन किया है' ऐसा विचार कर बादशाह ने अपनी मातृभाषा में उस नगर का "फतहपुर" ऐसा नया नाम स्थापन किया।

अनेक देश के राजाओं की भेंट की हुईं राजपुत्रियों के साथ समग्र प्रदेश की पृथ्वी का स्वामी बन कर बादशाह आनंदपूर्वक अपने वैभव का सुख भोगने लगा। छत्र और चामर धारण किये हुए, सिंहासन पर बैठे हुए और प्रसन्न नेत्रों से सभी की ओर देखते हुए इस बादशाह को आज्ञाधीन राजाओं ने आ आ कर प्रणाम किया। खानखाना आदि बडे बडे अमीर और उमराव, जिस तरह गुरु के सामने शिष्य खडे रहते हैं वैसे, बादशाह के आगे खडे रहने लगे।

अकबर के सुकृत्यों का वर्णन।

कल्पवृक्ष के समान याचकों के प्रति अति उदार ऐसे इस बादशाह ने, दूरसे आए हुए राजाओं के उपहारों को सिर्फ प्रसन्न- दृष्टि से देख कर ही, इसारे द्वारा, पास में बैठे हुए लोकों को दे दिये। औरों के धन की वांछा करने वाले दूसरे राजा जिस कर के न लेने से पृथ्वी को कर्ज वाली मानते हैं उसी महान् कर का त्याग कर इस बादशाह ने नीतिमानों में अग्रपद प्राप्त किया। शिक्षा पाने योग्य दुष्ट मनुष्यों को छोड कर शेष सभी नगर- निवासियों पर बन्धु की तरह प्रेम रखने वाले और निर्लोभवृत्ति वाले इस बादशाह ने स्वप्न में भी किसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को दण्डित नहीं किया। पहले मृतकधन को राजा कुमारपाल* ने छोडा था और अब इस समय अकबर बादशाहने कर सम्बन्धी धन को छोड दिया है। पहले गायों को बन्धनमुक्त अर्जुन ने किया था और इस समय वध-मुक्त अकबर ने किया है। प्रजा के पास से लिये जाने वाले कर का त्याग करने से इस बादशाह का उज्जवल यश कर्ण, विक्रम और भोज जैसे दानवीर नृपतियों के यश को भी उल्लंघ कर, ऊँचे स्वर्ग में चढ गया है। क्यों कि उन राजाओं ने जो धन दान किया है वह, इस बादशाह के राज्य में उत्पन्न होने वाले एक दिन के भी कर-धन की बराबर नहीं था। इस महान् कर- धन को छोड कर तो इस बादशाह ने संपूर्ण हिन्दु नृपतियों में उच्च पद प्राप्त किया और उत्कृष्ट दयालुता धारण कर तथा गौ-वध का निषेध कर कुल तमाम मुसलमान बादशाहों में भी सर्वोत्तम स्थान का स्वामी बना है। प्रातःकाल में, खूंटे की रस्सी से छूट कर, उँचे कान किये और आनंद के मारे ऊछलते कुदते बछडे जो अपनी माताओं का प्रेमपूर्वक दूध पीते हैं और गायें भी हर्षभर अपने बच्चों का शरीर चाटती हैं; यह सब अकबर बादशाह की दया ही का प्रताप है। जो स्वयं उच्च-नीच आदि सब ग्रहों का स्वामी है वह सूर्य भी वारूणी (पश्चिम दिशा) का संग प्राप्त कर अस्तदशा को प्राप्त हो जाता है तो फिर सामान्य मनुष्य, जो कर्मों के दास हैं, उन का तो कहना की क्या ?' ऐसा विचार कर सर्व प्रकार से निन्द्य ऐसी वारूणी (मदिरा-दारू) का इस बादशाहने निषेध कर दिया। कोई भी शस्त्रधारी मेरे सामने शस्त्र नहीं रख सकता, इस खयाल से बादशाह ने वैश्याओं, जो कि काम का शस्त्र धारण करने वाली हैं, उन का बहिष्कार किया। कवि कहता है :- इस बादशाह का शासन कोई नये ही प्रकार का है जो चोरों में अपने गुणों का अभाव करता

---

* कुमारपाल गुजरात के महाराज थे। उन्हों ने विक्रम संवत् ११९९ से १२३० तक राज्य किया। वे जैनधर्मानुयायी नृपति थे। सुप्रसिद्ध जैनाचार्य श्रीहेमचन्द्रसूरि के सदुपदेश से उन्हों ने अपने विस्तृत राज्य में द्यूतखेलन, मांसभक्षण, मद्यपान, वैश्यागमन आदि सातों कुव्यसनों का सर्वथा निषेध कर दिया था। उन के पहले, राज्य में यह पुरातन नियम प्रचलित था कि जो कोई मनुष्य सन्तान रहित मर जाता था उस के सर्वस्वका मालिक राज्य बनता था। इस नियम से मरने वाले के निराधार स्त्री आदि कुटुम्बियों को बडा कष्ट पहुंचता था। महाराज कुमारपाल ने अपने राज्यत्व काल में इस कष्टप्रद नियम को बन्ध कर दिया था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। अर्थात् चोर चोरी करना ही भूल गए हैं जिस से कहीं पर चौर्य-शब्द सुनाई ही नहीं देता है। इस बादशाह के कोपयुक्त नेत्र की भयंकरता का स्मरण कर कोई मनुष्य किसी परस्त्री के सामने नहीं देखता। 'पराजित मनुष्य का ही विजेता के आधीन होना न्यायसङ्गत बात है परंतु द्यूत के विषय में यह नीति बराबर नहीं पाली जाती। द्यूत (जूआ) के आधीन जीतनेवाला और हारने वाला - दोनों हो जाते हैं। ऐसी बदनीति मेरे राज्य में नहीं चलनी चाहिए; ऐसा विचार कर बादशाह ने द्यूत खेलना बन्ध कर दिया। 'इस समय, इस चराचर जगत् का स्वामी एक तो ईश्वर और दूसरा मैं हूं। जिस में ईश्वर तो संसार के सभी जीवों पर दया करता है, तो फिर मुझे भी सब पर दया ही रखना चाहिये।' यह सोच कर बादशाह ने शिकार खेलना भी छोड दिया। 'वीरपुरुषों की यह प्रतिज्ञा होती है कि - जो अपराधी, शस्त्र उठाकर बडा अपराध करता है उसी पर वे अपना शस्त्र चलाते हैं, औरों पर नहीं, तब मैं शूरवीरों में शिरोमणि कहला कर इन निरपराध और भयाकूल पशुओं पर कैसे अपना शस्त्र चलाऊँ ?' यह विचार कर बादशाह सभी प्राणियों पर रहम करता है। सज्जनों के सुवाक्य अपने कान में न आ सके इस हेतु से और नृपतियों ने जिन दुर्जनों को अपने दौवारिक (दरबान) बना रक्खे हैं, उन को इस बादशाह ने अपने निकट भी नहीं आने दिये। यदि यह बादशाह जलक्रीडा की इच्छा से यहां पर आवें तो बहुत अच्छा हो, इस उत्कंठा से आंखों के बिना मूंदे (निर्निमेष होकर), इस बादशाह की राह देखते हुए डाबर-तालाब के मत्स्य आशीर्वाद दे रहे हैं कि 'हे बादशाह तूं चिरंजीव ! जय ! विजय ! बुद्धिमान हों !' अर्थात् बादशाह ने डाबर तालाब के मत्स्यों के वध का निषेध कर दिया। बादशाह की इस दया का अनुकरण, जिन का भक्ष्य केवल मत्स्य मात्र हैं ऐसे बगले भी करने लगे। वे भी मछली को अपने मुंह में पकड कर एक बार उसे फिर छोड देते (बगलों का ऐसा स्वभाव होता है।)

इस बादशाह के सौराज्य में न कहीं अनीति है, न परराज्य का भय है, न बिमारी है, न दुर्भिक्ष पडता है और ना ही राज की तरफ से कोई कष्ट है। समय पर ही मेघ बरसता है और समय पर ही वृक्ष फलते हैं। ईख में बहुत मीठास भरी हुई है और खानों में बेसुमार धातु निपजती है। इन सब आश्चर्यकारक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बातों का कारण इसी स्वामी की सुदृष्टि के प्रताप को समझना चाहिये। कवि अकबर के दयाकी महिमा बतलाने के लिये एक कल्पना करता है, कि किसी व्यक्ति ने दया देवी को उदासीन दशामें देख कर, उस से कुछ सवाल- जबाब किये, जो इस प्रकार के थे।

व्यक्तिः - (दया से) 'हे कन्ये ! तूं कौन है?'

दयाः - 'मैं दया-कृपा हूं'

व्यक्तिः - 'तूं विह्वल क्यों है ?'

दयाः - 'मेरे स्वामी कुमारपाल चले गये'

व्यक्तिः - 'तो फिर क्या हुआ ?'

दयाः - 'स्वामी के अभाव में हिंसक मनुष्य मेरा सर्वनाश कर रहे हैं'

व्यक्तिः - 'तो अब क्या चाहती है ?'

दयाः - 'किसी आश्रयदाता को जो मेरा पालन करे'

इस पर व्यक्ति ने कहाः - 'यदि तेरी यह इच्छा है तो समग्र पृथ्वी के स्वामी बादशाह अकबर के पास जा, वह तेरा पालन करेगा।'

मतलब यह है कि कुमारपाल राजा के बाद अकबर बादशाह ने ही दया की विशेष पालना की।

कवि बादशाह को उद्देश कर कहता है;- हे नरेश ! दयापरायणता से जीव मात्र को सुखी करने वाले ऐसे तुमारे प्रतापका दीपक शत्रुओं की स्त्रियों के बहुत कम ऐसे निःश्वास - पवन से प्रेरित हो कर मानों चिरकाल तक ठहर गया है। (शत्रुओं के नाश हो जाने पर ही विजय का तेज चिरकाल तक प्रदीप्त रह सकता है। तथा थोड़े से पवन के सहारे से ही दीपक जल सकता है।) हे राजेन्द्र ! जहां के शत्रुओं को तुमने देशनिकाल दिया है ऐसे नगरों में ऊगी हुई घास की सुलभता को तुम बढा रहे हो यह जान कर ही, मानों स्पर्द्धा से, तुम्हारे शत्रु घास को मुंह में डाल डाल कर उस की दुर्लबता बढा रहे हैं। मतलब कि, शत्रुओं के शहर उज़ड पडे हैं और उन में खूब घास उग रही है तथा शत्रु निर्वासित होकर जंगलों में घास खाते फिरते हैं। यदि बुद्धिमती चन्द्रपत्नी रोहिणी ने, पहले ही अपने पति चंद्रमा पर निशानी के लिये, काला दाग न बना देती तो अकबर के उज्जवल यश से इस समय जब सारा ही जगत् श्वेत हो रहा है तब, वह अपने पति को कैसे पहचान सकती।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कवि बादशाह से कहता है- हे नरेश ! आप जगत् के स्वामी और गुरु बन कर (अकबर अपने को जो जगद्गुरु और जगदीश्वर के बिरुद से प्रसिद्ध करता था उस को लक्ष्य कर यह कथन है) जो हिंसादि दोषों का निवारण करते हैं इस से सब प्राणी परस्पर के भय से तो मुक्त हैं परंतु स्वयं आप के भय से- आप की आज्ञा का उल्लंघन होने पर शीघ्र ही मिलने वाले कठोर दण्ड के डर से- वे सदा शंकित रहते हैं; यह आश्चर्य की बात है ।' अर्थात् अकबर की आज्ञा का भय मृत्यु के भय से भी अधिक कठोर है । ईश्वर तो अपने सभी आदेशों को इस बादशाह पर रख कर कृतकृत्य हो गया है; और यह अकबर भी साधु पुरुषों की तरह ईश्वर के आदेशों का प्रचार करता हुआ, ईश्वर-भक्तों में अग्रपद प्राप्त कर रहा है । इस बादशाह की ही दूसरी प्रतिकृतियों समान शेखूजी (शेख सलीम), पहाडी (मुराद) और दानियारा नामक तीनों शाहजादे आयुष्यमान् हों । दीपक, चंद्र और सूर्य इन तीनों तेजस्वी पदार्थों में जैसे सूर्य ही अधिक प्रतापवान् गिना जाता है वैसे इन भाईयों में भी बडे भाई- शेखूजी ही बादशाह पद के पाने योग्य हैं ।

यहां से आगे का कथन कवि अपने विषय में कहता हुआ लिखता है- अत्यंत परिचय के कारण, स्वभाव का ठीक ठीक परिज्ञान हो जाने से, मनुष्यों के स्वामी इस अकबर बादशाह से मैंने दया की याचना की । इस याचना करने में अपेक्षित साहस और बुद्धि-वैभव, इन दोनों के होने में खास कारण मेरे गुरु श्रीसकलचन्द्र वाचकेन्द्र का पवित्र प्रभाव ही है । वर्तमान समय में जिन्होंने भारत वर्ष के साधुओं में अग्रपद पाया है, जिन के नाम का पहले कई दफे श्रवण कर, तथा अभी दर्शन कर, सत्संगति-रसिक बादशाह ने अपने श्रवण और नेत्र का विवाद शांत कर दिया है; और जो सुकृत्यों के करने-कराने में विशेष सहायता करने वाले हैं; उन श्रीहीरविजय सूरीश्वर को इस नरनाथ ने जो अमारिशासन-जीवों के वध के निषेध का शाही फरमान-दिया है उस के पुण्य का प्रमाण केवल सर्वज्ञ ही जान सकता है और नहीं । मच्छीमारों की जालों से मुक्त होकर जो मत्स्य-गण, अपनी प्रिय मछलियों से जा मिला, चिडीमारों के पासों में से छूटकर जो पक्षीसमूह ने अपने बच्चों का चुंबन किया और दुग्ध से जिन के स्तन भरे हुए हैं ऐसी सुन्दर गायें अपने प्रिय बछडों के प्रेम के कारण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जल्दी जल्दी जो स्वकीय स्थानों की ओर दोडी जा रहीं हैं; यह सब दयामूर्ति इस अकबर बादशाह की दया ही का परिणाम है। इस बादशाह ने अपनी अपार उदारता से जगत् के जीवों को जीवन-सुख प्रदान करते हुए जो महत्पुण्य उपार्जन किया है उस के प्रभाव से यह सम्राट् अपने प्रिय पुत्रों के साथ चिरकाल तक अभ्युदय को प्राप्त करें - (यही शुभाशीष हैं।)

अंत में कवि अपने इस ग्रंथ के द्वारा जो जो कार्य हुए उनका बहुत संक्षेप में उल्लेख करते हुए कहता है- इस बादशाह ने जो जजिया कर माफ किया, उद्धत मुगलों से जो मंदिरों का छुटकारा हुआ, कैदमें पडे हुए कैदी जो बन्धन रहित हुए, साधारण राजगण भी मुनियों का जो सत्कार करने लगा, साल भर में छः महिने तक जो जीवों को अभयदान मिला और विशेष कर गायें, भैंसें, बैल और पाडे आदि जो पशु कशाई की प्राणनाशक छुरि से निर्भय हुए; इत्यादि शासन की समुन्नति के- जैनधर्म की प्रभावना- के जगत्प्रसिद्ध जो जो कार्य हुए उन सब में यही ग्रंथ (कृपारस कोश) उत्कृष्ट निमित्त हुआ है - अर्थात् इसी ग्रंथ के कारण उपर्युक्त सब कार्य बादशाह ने किये हैं। कृतज्ञ लोगों के प्रति प्रार्थना है, कि वे निर्मत्सर हो कर इस ग्रंथ का संशोधन, पाठन और प्रचार करें-किं बहुना ? इसे सर्वथा हृदय में धारण करें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट १

वाचकशान्तिचन्द्रगणिरचित

श्रीहीरविजयसूरिस्वाध्यायः ॥

तियसकयकणयपउमे पउमासणसंठिअं पवरपउमे ।
नमिउं जिअतिअसगुरुं सिरिगोयमगणहरं सुगुरुं ॥१॥
सिरिविजयदाणमुणिगण-मतल्लिया गणमहासमुद्दम्मि ।
आणंदपुण्णचंदं थुणामि **सिरिहीरविजयगुरुं** ॥२॥ युगलं ॥
कविचक्कवट्टिबिरुया पत्ततिरेहातिसच्चतिगरेहो ।
परितावसमणमेहो जयइ गुरू गुणविमलदेहो ॥३॥
तुह विमलवाणिहंसी तिजगतडागम्मि चारु[१] विलसंती ।
मिच्छत्तमलिणसलिला सम्मद्दुद्धं पुढो कुणइ ॥४॥
रयणत्तयत्तिनित्तो परीक्खपत्तो परीक्खयाणं च ।
सिरिहीरविजयसूरी हीरुव्व य संपयं दिसउ ॥५॥
जयइ मयणमयमहणो गुरू समग्गोवसग्गदुहसहणो ।
विहुअविहुंतुदगहणो चंदो तेओतुलिअदहणो ॥६॥
धुअअट्ठमयट्ठाणं पणट्ठकट्ठं च निट्ठिअट्ठं च ।
[२]संतुट्ठिपुट्ठिलट्ठं थुणामि मुणिजिट्ठमिट्ठकरं ॥७॥[३]
उड्ढगई वि अरेवो संवरदुगुणो वि जो परमदेवो ।
भत्तिभरनमिरदेवो सो सोहइ मुणिवरोऽलेवो ॥८॥
सिद्धंतामिअपुण्णो कुलभवणं लद्धिबुद्धिलच्छीणं ।
उप्पन्नकित्तिचंदो रयणाणि दिसउ गुरुसमुद्दो ॥९॥
करहियकमकमलम्मि य अतुच्छगच्छाहिवस्स संलग्गा ।
अच्छेकच्छवमच्छा अच्छेरं पिच्छह च्छेआ ॥१०॥
लोआ लोआ लोआ लोआलोआ य लोअलोआ य ।
लोआलोआलोआ लोआलोआ य लोआ य ॥११॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वक्कग्गीवत्तं जह न सिक्खिअं तेण निगडगेणावि ।
सस्स तह तुमं नियय़ं नाह ! विरत्तो भवत्थो वि ॥१२॥ युगलं ॥
खंतो दंतो संतो कंतो प(पं)तो अ रइअकलिलंतो ।
आयरबद्धतिजोगो मुह (मह ?) झेयं होउ मुणिवसहो ॥१३ ॥
आणं सिरसि कुणंतो मुणिवइणो पाणिणो धुवं हुंति ।
गहिअसिवरमणिथणघड - युगसमकेवलदुगाहुलिअं ॥१४॥
पउमपओ पउमकरो पउममुहो पउमलोअणो अ मए ।
पउमभवभासुराहो पउमासणसंठिओ झाओ ॥१५॥
सिरिसयलचंदवायग-विणेअ**मुणिसंतिचंद**थुअसुगुणो ।
सिरिहीरविजयसूरी जयउ चिरं संघभद्दकरो ॥१६॥

श्रीहीरविजयसूरि स्वाध्यायः ॥

टि. १. **"चारु पहसंती"** इति प्रतिपार्श्वे ॥ २. **"लद्धतरतुद्विपुट्ठं"** इत्यपि पाठः, इति प्रतावेव पाठान्तरसूचा ॥ ३. सप्तमगाथानन्तरं "सयलकलकला(व) कलिओ, कलिओ ----- । अइ पुण्णकंतिपुण्णो, कुणउ शि(सि)वं हीरविजय-गुरू ॥८॥" इति पाठो दृश्यते, किन्तु स कर्त्रा लेखकेन वा त्यक्त इवाऽऽभाति ॥

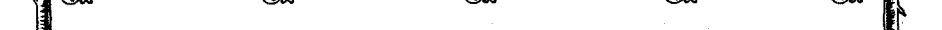

परिशिष्ट २

अज्ञातकर्तृक

अकबरसहस्रनाममाला

॥ र्पः ॥ ॐ नमः ॥
वाग्देवीं प्रयतः प्रणम्य शिरसा कर्पूरकुन्देन्दुभां
तद्ध्यानैकमना मरालगमनां वाद्यद्विपश्रीकराम् ।
भक्तेभ्यो ददतीं स्वभक्तिमतुलं(लां) जाड्यत्व(प्र?)विध्वंसनीं
कुर्वेऽहं जगतः प्रभोर्गुरुगुरोर्नाम्नां सहस्रं मुदा ॥१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सार्वभूमिः सहस्राक्षो भूपतिर्लोकपालकः ।
जगद्गुरुः स्याहिसाहिः चिरं जीयादकब्बरः ॥२॥
हमाऊनन्दनो नंद्य (नन्द्यात्/ऽनिन्द्यः?) कुलध्वजः कुलवर्धनः ।
मुद्करो मुद्गलश्रेष्ठो मान(नु)नीमदनोपमः ॥३॥
राजराजोऽसुरज्येष्ठो नरनेता नरप्रभुः ।
नरसं(सिं)घो नरवीरश्च नरो नवलनागरः (?) ॥४॥
नरोत्तमो नराब्भूतो नरपालो नराधिपः ।
नरचन्द्रो नरेन्द्रस्तु नरनाथो महीधवः ॥५॥
कलाकरः कलासिन्धुः कलिगांन (?) कविप्रियः ।
कलिकृत् कमलाकान्तः कलिकाले कलाधिकः ॥६॥
खड्गखेटक कोदण्ड-धारी खलविनाशकः ।
ख(ष)ड्दर्शनमि(म)ताभिज्ञः खरदीध(धि)तिभिक्तिव(कृ)त् ॥७॥
गङ्गासक्तो गां(गा)नरक्तो गोरक्षो गोहितंकरः ।
गोवर्धनधराधीशो गुरुभक्तो गुरुप्रियः ॥८॥
घनाघनघटाटोपा–नुकारिगजकेलियुक् ।
रथघण्टरणत्कारो रणरङ्गेऽतिकोविदः ॥९॥
चारुनेत्रश्चारुवर्ण–श्चारुरूपश्चराचरे ।
चारुवेषश्चारुचन्द्रः चारुचातुर्यबन्धुरः ॥१०॥
छात्रधारो (छत्राधारः) छत्रपति-श्छात्ररक्षाकरोऽपि च ।
छन्दोलक्षणवित् प्राज्ञः पण्डितः पाकशासनः ॥११॥
जलकेलिप्रियो नित्यं जाह्नवीजलपां(पा)नकृत् ।
झषादिजालविच्छेदी रूपवान् नागरीप्रियः ॥१२॥
अवल्लीया जहांगीरो जलालदीन महम्मदः ।
अकबरो(रः) पातिसाहि - रव्याद्धो धर्मनन्दनः ॥१३॥
जगत्प्रभुर्जगच्चक्षु-र्जगत्त्राता जगत्पिता ।
जगद्वन्द्यो जगद्ध्येयो जिष्णुर्जीवदयापरः ॥१४॥
तिलको बाबरे वंशे सुरत्राणो महर्द्धिकः ।
नीतिकृत् सुकृती रंगी शोभनव्यवहारकृत् ॥१५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पारीक्षिको दिव्यदृष्टिः सर्वसंग्रहकारकः ।
चतुरङ्गचमूनेता त्राता वेत्ता विदांवरः ॥१६॥
पुराणभारतश्रोता वेदोक्तप्रमाणकृत् (?) ।
हिन्दुस्थानप्रभुश्रेष्ठो योगे(गी)न्द्रजनवल्लभः ॥१७॥
सर्वसत्त्वहितः श्रीदः श्रीकरः सर्वकामदः ।
शरण्यः शंकरीनाथः स्वामी परमशक्तिप(? भृत्?) ॥१८॥
जगत्श्रेष्ठः सर्वव्यापी श्रीनिवासः सखार्णवः ।
सर्वधर्मनिवासश्च सर्वदृष्टिः सदाशिवः ॥१९॥
तत्त्वमूर्ती रसज्ञश्च नित्यधर्मो नरोत्तमः ।
ब्रह्मबिम्बप्रकाशात्मा विघ्नहारी प्रियंवदः ॥२०॥
क्षेत्राधीशः क्षेत्रपालो निर्विकारो महामतिः ।
वीरः प्रामाणिको धीरो सकलकरवर्जकः ॥२१॥
निर्भयो ज्ञानभक्तश्च विनोदी विनयात्मकः ।
रविभक्तो विलासी च सादरो जनवल्लभः ॥२२॥
नवरोजमहाकारी रविवारतपस्तपी ।
वैरिसाहिकृतोद्वेगो गिरिभंजनसत्पथि (?) ॥२३॥
हिन्दुस्थानकृतस्थानो नित्यसिद्धोपसेवितः ।
वृद्धसिद्धो महाबुद्धो बुद्धिबोध(धि)तहिंसकः ॥२४॥
मांसाहारा(र)निषेधी च सुरापाननिवारकः ।
कृपापकर (करः) कृपासिन्धु–र्दानदानेश्वरो(रः) परः ॥२५॥
सकलत्रो जगन्मित्रः (त्रं), राज्यधोरी कलाकविः ।
क्षेत्रजः खड्गपाणिश्च क्षत्रपो वैरिसूदनः ॥२६॥
क्षेत्रज्ञा(ज्ञः) क्षेत्रजो विद्वान् भूतनाथः सुहृज्जनः ।
दुर्गदुर्गाधिपो दाता भोक्ता य(अ) ऽसुरसेवितः ॥२७॥
सिद्धिदो ऋद्धिदो राजा रंकपालः प्रजापतिः ।
धनदो धनहारी च पापभीरुः पराक्रमी ॥२८॥
शंकरः शान्तिदो वृद्धः स्तंभनो मोहनस्तथा ।
क्षोभनो जम्भनो बोद्धा शान्तः क्षान्तो जितेन्द्रियः ॥२९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धनपालः प्रजाकांक्षी निष्पापः चं(च) कलानिधिः ।
भाग्यवान् भैरवो भोगी धनभोक्ता प्रियंवदः ॥३०॥
आप्तभक्तः शास्त्रवेत्ता शतानीकः शतव्रतः ।
शीलधारी धराधीशो धीधनो धीसखो धनी ॥३१॥
धात्रीधवः कृती पुत्री छत्री दण्डी महाबली ।
महाहंसो महाराजो महामङ्गलदर्शनः ॥३२॥
महामित्रं पवित्रात्मा महाज्योतिर्महामही ।
महामहोपदेष्टा च महामान्यो महाशिवः ॥३३॥
महाधी(धै)र्यो महामूर्त्ति-र्महामोहो महाननः ।
महाशान्तिर्महाक्रान्ति-र्महाज्ञायी महाबली ॥३४॥
महावीर्यो महाशक्ति- र्महाश्व(हैश्व ?)र्यो महात्म(स्म?)यः ।
महाध्यानी महाज्ञानी महावंशो महामतिः ॥३५॥
षट्त्रिंश(त्) रागवेत्ता च मित्रज्ञः स्नाल (स्थान?)वित्तथा ।
गीतनृत्यकलावेदी सर्ववादकवादकः ॥३६॥
छन्दस्तर्केषु नीतिज्ञः ज्योतिस्ताव-कवित्ववित् ।
षड्भाषाभाषको वैद्यो - रसायनमहोदधिः ॥३७॥
कृषिवाणिज्यसद्विज्ञो वह्निस्तम्भनलेपकृत् ।
अम्बुवृष्टिकलाकृष्टि (?)- वैरिविद् विष्टिकोविदः ॥३८॥
वर्णवृद्धिः स्वर्णसिद्धि - र्मन्त्रतन्त्रविशारदः ।
ज्ञान(त?)विज्ञान- धर्मार्थः काममोक्षविचक्षणः ॥३९॥
द्वासप्ततिकलावेदी दिशानामधिपोप्यतः ।
चतुर्दशमहाविद्या- प्रवीणः पुरुषोत्तमः ॥४०॥
वषट्(अ)र्थैकान्तशान्तः (?) स्वस्तिस्वाहास्वधात्मकः ।
भवद्भाविभूतभावा- वभासनमतिस्ततः ॥४१॥
सत्त्वादिगुणवान् वाङ्मी मनोगोचरकर्मकृत् ।
सृष्टि-पालन-संहार-कारी [च] त्रिविधात्मकः ॥४२॥
सात्त्विकः सात्वको (तात्त्विको?) जीवो विज्ञानानन्ददायकः ।
वर्षत्रिदंड भोक्ता च पुराणपुरुषोत्तमः ॥४३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवदो बुद्धिदो धर्मा-भयदो दृष्टि-मार्गदः ।
जापक(को) व्यापको बोद्धा-वतारी परमेश्वरः ॥४४॥
ऐश्वर्यादिगुणोपेतो भगवान् भास्करः प्रभुः ।
आसमुद्रान्तकीर्तिश्च सर्वदः शिवदात्मकः ॥४५॥
सर्वतीर्थोपदेष्टा च सर्वपाखण्डमोचकः ।
सर्वदर्शन(भ) क्ति (क्त)श्च गुणाब्धिर्गुणकेलिकृत् ॥४६॥
अजेयश्चञ्चलोऽचिन्त्यसामर्थ्योऽसंख्यवाहनः ।
अवाच्यविभवाधीशोऽहंकाररहितो जयी ॥४७॥
पुण्यपापविधिप्रज्ञो व्यक्ताव्यक्तस्वरूपकः ।
बालगोपालसिद्धश्च यवनोऽभेद्यशासनः ॥४८॥
ब्रह्मचर्यरतो नित्यं भुक्तभोगी गृहस्थितिः ।
अलक्षो(क्ष्यो) लक्ष(क्ष्य)वेधी च लक्षलक्षितलक्षणः ॥४९॥
दशावतारमध्यस्थो दयार्द्रहृदयो यतः ।
सत्यवादी सत्ययुक्तः परनारीसहोदरः ॥५०॥
शरण्या(ण्यो)ऽर्थिपरत्राणे वज्रपंजरसन्निभः ।
परपीडाहरो नित्य-मन्तर्यामी विचक्षणः ॥५१॥
निरातङ्को निःकलङ्को निर्मायश्च निरामयी ।
निरंजनपदध्यानी नित्यदानोद्यतो जने ॥५२॥
गजप्रियो हरिश्रेष्ठो हरिनाथो हरिप्रभः ।
हरिज्ञानि(नो) हरिध्यानो हरिश्रीर्हरिशासनः ॥५३॥
सारंगकृष्णनिस्तारः सारसारंगलोचनः ।
भयसारंगनिस्तारः सारंगसमताधरः ॥५४॥
वंशसारंगवासेनो(न) सुरभीकृतविष्टपः ।
सारंगरागसंगीत- गीतगीतयशोभरः ॥५५॥
सपुत्रपौत्रः सद्वंश्यः सकबंधशकलः कलः(?)।
सुमित्रः स्वजनः साधुः सुकलत्रः सुशिष्यकः ॥५६॥
कल्पद्रुकल्पः कलिकामधेनु- रचिन्त्यचिन्तामणिसत्प्रभावः ।
अभीप्सितो(ता)पूरणकामकुम्भो जगद्गुरुः साहिरकब्बरोऽस्ति ॥५७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्वप्रदः सर्वहितः समर्थः सर्वाधिनाथः सविभः सुनाथः ।
सत्साहिसाहिर्जयतात् सदा हि, संचारिसेनाभयकम्पिताहिः ॥५८॥
अनन्तकल्याणनिकेतनाय समर्थनाथैरपि वन्दिताय ।
पात्राय तीर्थ्याय(?) महत्तराय, नमो नमः साहिर(अ)कब्बराय ॥५९॥
अग्र्याय माङ्गल्यवरप्रदाय सयोगिते(ने) वाक्पतिसेविताय ।
महायशे(?) शान्तिरमाकराय नमो नमः साहिर (अ)कब्बराय ॥६०॥
महो(हा)यशे(?) पावनपावनाय प्रदक्षिणीयाय सुलक्षणाय ।
समस्तजीवप्रहतं(?) कराय नमो नमः साहिअकब्बराय ॥६१॥
अगण्यपुण्याय महाजयाय योगेन्द्रचन्द्राय दयालयाय ।
दारिद्र्यदावानलवारिदाय नमो नमः साहिअकब्बराय ॥६२॥
गुणाब्धये कामितपूरणाय छत्रत्रयीमण्डितमण्डनाय ।
महीधरायाप्र(प्र?) मतीकराय नमो नमः साहिअकब्बराय ॥६३॥
अनेकभूपालनतक्रमाय जने महत्सिंहपराक्रमाय ।
नित्योत्सवायार्त्तिविपद्धराय नमो नमः साहिअकब्बराय ॥६४॥
विशालनेत्राय शुभाननाय सुवर्णवर्णाय सुकोमलाय ।
शान्ताय कान्ताय महत्तराय नमो नमः साहिअकब्बराय ॥६५॥
महीभुजायामृतवाग्युताय कपाटवक्षःस्थलभूषिताय ।
अरातिभूमीरुहकुंजराय नमो नमः साहिअकब्बराय ॥६६॥
अनाथनाथाय मुदंकराय सल्लक्षणैर्लक्षितपत्कराय ।
कालंजरायातिकलाधराय नमो नमः साहिअकब्बराय ॥६७॥
कलावते ज्ञानवते यशस्विने श्रीस्वामिने हंसविहङ्गगामिने ।
परात्मने पूर्वभरेतराय (?) नमो नमः साहिअकब्बराय ॥६८॥
जैनाय बौद्धाय च सांख्यकाय नैयायिकायातिविशेषकाय ।
षड्दर्शनीयै मनिकेस्वराय (?) नमो नमः साहिअकब्बराय ॥६९॥
गिरीशो(शः)पुरेशो धरेशो नरेशो गढेशो मवेशो(?) नगेशो गणेशो(शः)।
मुनीशो जिनेशो गजेशो हयेशो रथीशः स्तुतोऽकब्बेरशः [सदैव] ॥७०॥
अभीष्टो गरिष्ठो विशिष्टः प्रकृष्टः प्रमोदी विनोदी सुविद्योऽनवद्यः ।
सुसिद्धः प्रबुद्धः सुवृद्धो निवृद्धः स्तुतोऽकब्बरो बाबरीवंशमेरुः ॥७१॥

५००

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आर्या

अकबरनामसहस्रं गणितपदैर्गुणितमत्र विज्ञेयम् ।
भूतभविष्यद्योगा- दधिकं तत्पञ्चशतकेन ॥७२॥
इति भूतभाविसहश्रमेकं नामकामिदं (?)
साहिसाहि जगद्गुरुरिति वन्द्यवन्द्यपदद्वयी ।
प्रातरेव विहाय निद्रामुद्यमेत जपद्द्रुतं (?)
भवति भवतः सुप्रसन्नोऽकब्बरो महिमास्पदम् ॥७३॥
सम्यग् जपतां पठतां श्रेयः कल्याणमङ्गलं तेषाम् ।
धनसन्तानसमृद्धिं भवतितरां नात्र सन्देहः ॥७४॥
अश्नुते किल चारुवाणी सर्वप्रकृतिकारणी ।
सुन्दरा मनुराजलक्ष्मी छत्रचामरधारणी ॥७५॥
दीर्घमायुरनिन्दिता मतिर्यः पठेदतिसादरम् ।
तस्य भवति सुप्रसन्नोऽकब्बरो महिमास्पदम् ॥७६॥
इति नाममाला निर्मिता रविइन्द्रचन्द्रसुभाविता
जिहांगीरसाहिहमाऊनन्दनसत्प्रभास्त्रिजगद्गुरोः ।
पठतः गुणत विशारदा श्री बद्धरूपधरस्य भो-
भवति भवतः सुप्रसन्नोऽकब्बरो महिमास्पदम् ।७७॥
॥ इति श्री अकब्बरपातसाहनामानि लिषितं ॥ सं.१९८१ वर्षे ॥

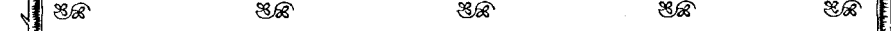

परिशिष्ट - ३

'कृपारसकोश' गतानां पद्यानां सूचिः ॥

अक्षोडमुख्यखाद्यानि	१२
अदृष्टलक्ष्यव्यधतत्परं स्मरं	२४
अदृष्टसूर्याः सदने यवन्यः	१४
अधिज्यके धन्वनि तस्य विद्विषा	२०
अनाविलं क्याबिलमस्ति नाम्ना	१३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुभवन्नपि राज्यमयं पितु-	६७
अन्यैर्नृपैर्यः खलु साधुवाक्य-	१०९
अन्योन्यमात्सर्यवशादिवैताः	२३
अपहरति महो यो मण्डलस्थग्रहाणां	१०२
अप्यन्यदङ्गं क्षितिपस्य यद्यत्	६६
अप्यप्रिये प्रियगिरः प्रियकारकस्य	६
अस्ति त्रस्तसमस्तारि	१८
अस्मिन् भिल्लातकरसमभि०	११६
अस्य क्षितीन्दोरनुशासनं नवं	१०४
आदेश्यमात्मीयमिहैव सर्वं	११८
इक्षोर्भिक्षोः कुले कोऽपि	६०
उच्चैःश्रवःसजातीयाः	११
उत्खाते प्रचलत्तुरङ्गमखुरै०	७३
उद्दामद्विरदद्विदन्तमुशली तस्या०	५०
उद्भासितद्वेषिपुरोद्गतेषु	११५
ककुद्मतः स्कन्धसपत्नभूतं	६३
कन्ये कासि कृपा कुतोऽसि विधुरा	११३
कर्णायतस्मितविलोचनकैतवेन	५८
कल्पद्रुशाखद्वयमस्य दीर्घं	६२
केशैः केसरिणं विलग्य शशवद्	५१
क्रूरा बका अकबरस्य महामहीन्दोः	१११
क्षोभो न लोभो न न कामकेलि०	२
चोलीबेगमनन्दने क्षितिपतौ	११२
जगद्गुरूभूय जगत्त्रयीपति०	११७
जितो हि यो यत्र स तत्र सक्तो	१०६
त्रिष्वपि प्रकृतिबन्धुरबन्धु०	१२०
त्वं जीव नन्द विजयस्व चिरं जय त्व-	११०
दग्धवैरिदलिकः किल तेजो०	१९
ददाति धातुः किल साधुवादं	५६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दशाननस्येव जगच्चरिष्णु	१०५
दिग्यात्रायै प्रतस्थेऽथ	६९
दुर्बलश्रुतयस्तुङ्ग०	१०
देशः पेशललक्ष्मीकः	८
ध्रुवं द्विषामेव चकोरचक्षुषां	११४
नामतः समजनिष्ट हमाऊ	३
निर्द्वन्द्वेन शुभेन येन विभुना०	२१
नीराजनावह्निरपि प्रदक्षिण०	७०
नृपांश्छिन्दन् भिन्दन् विषमतरदुर्गानदरितो	७२
न्यायौचितीकरणतो रसनाऽस्य साधून्	५९
परिपाकगलद्भृन्तैः	९
पवित्रैश्छत्रौघैश्चमरसचिवैः शंसितशुभैः	७१
प्रातर्बन्धनदामनीधुतगला	१०१
पीयूषकुण्डमिदमीयमुखं विभाति	६१
पूर्वं विमत्य गर्वान्धान्	७४
भूयस्तरां परिचितेर्विदितस्वभावः	१२१
यदा यदोष्णत्विषि शीतलत्विषौ	५२
यदीयशास्तारमशीतशासनं	१६
यान् सांप्रतं भरतसाधुषु लब्धसीमान्	१२२
येनादर्शि जगत्करामलकवत्	१
रणाङ्गणे कोशबिलाद् विनिर्गते	५३
राजानमाजानुभुजं निशम्य तं	६८
राज्यश्रीर्यौवनश्रीश्च	५५
वक्षःकपाटविपुलं सुदृढं यदस्य	६४
व्यक्तीभवेत् सुजनलोकगुणोऽस्फुटोऽपि	७
शस्त्रं न शस्त्री दधते मदग्रे	१०३
शस्त्रग्रहेण धुरि लब्धसमन्तुताके	१०८
शुल्कं तावदनेन कल्पतरुणा	११९
शेषूजी-पाहडी-श्रीम-	१००

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शोभाभिभूतकमलौ सरलाङ्गुलीकौ ६८
श्रीयुक्तहीरविजयाभिधसूरिराजां १२३
संसारतमसः पारे ५
स क्रमेण ववृधे सुतरत्नं २३
सर्वप्रभुः संप्रति मद्द्वितीयो १०७
सांसारीभिरविद्याभि० ४
साम्राज्यभाग्यमहो भवितेति वर्ण ५७
सुसेविताः स्वामिजना इव ध्रुवं १५
स्नेहक्षयो यत्र विभातदीपे १७
स्वर्गयात्रोन्मुखे ताते ५४

परिशिष्ट-४

'कृपारसकोश' गतविशेषनाम्नां सूचिः ॥

अकबर ४३, ४४, ७२, ९५, १११, ११३
(अक्षोड) १२
काबेरी ७८
कुमारपालः ९८
क्याबिलं (पुरं) १३
खानखाना ९४
खुरासाण ८
चोलीबेगम २६, ११२
जीजिआकर १२६
दानिआर ११९
पाहडी ११९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फतेपुर ८९, ९८
बर्बरः १८
मुद्गलाधिपः (मुद्गल) १८
शेषूजी ११९
सकलेन्दु (वाचक) १२१
हमाऊ २१, ७२, १०१
हीरविजयसूरि १२३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org